॥ ओ३म् ॥

खण्डन मण्डन ग्रन्थमाला पुष्प सं० ४५

सोऽहं पाखण्ड खण्डन

अर्थात्

अद्वैतवाद मीमांसा

लेखक—

[खण्डन मण्डन ग्रन्थमाला के समस्त ग्रन्थों के लेखक]

आचार्य **डा० श्रीराम आर्य**

कासगंज (एटा) उ० प्र०

प्रकाशक

वैदिक साहित्य प्रकाशन

कासगंज (एटा) उत्तर-प्रदेश भारतवर्ष

दयानन्दाब्द १६१

द्वितीय बार आर्य संवत् १९७२९४९०८६ [मूल्य ४)५०

११०० सन् १९८६ ई०

❀ ओ३म् ❀

खण्डन मण्डन ग्रन्थमाला पुष्प सं० ४५

अद्वैतवाद खण्डन

('सोऽहं', 'शिवोऽहं', 'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्वमसि'
आदि के पाखन्ड मत का खण्डन)

ग्रंथकार
(खण्डन मण्डन ग्रंथमाला के समस्त ग्रंथों के प्रणेता)
डा० श्रीराम आर्य
कासगंज (एटा) उ० प्र०

प्रकाशक

वैदिक साहित्य प्रकाशन

कासगंज (एटा) उ० प्र० भारतवर्ष

दयानन्दाब्द १६१
सृष्टि सम्बत् १९७२९४९०८६

द्वितीय बार ११००] सन् १९८३ [मूल्य रु० [illegible]

प्रकाशक

वैदिक साहित्य प्रकाशन

कासगंज (उ०प्र०)

ई वैदिक पुस्तकालय मुम्बई

आचार्य धर्मेश्वर आर्य

अगस्त १९८६

सम्पर्क- 9029421718

मुद्रक

साहित्य प्रिंटिंग प्रेस,

हाथरस

भूमिका

आर्य जाति का यह दुर्भाग्य रहा है कि उसमें धर्म के विषय में प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्रता रही है कि वह जो भी पन्थ अपने निरंकुश विचारों के आधार पर चाहे चला सकता है। हिन्दू समाज में पचासों सम्प्रदाय देश में इसी प्रकार चालू हो चुके हैं, सैकड़ों देवी देवताओं की पूजा देश में चालू है, बीसियों लोग अपने को परमात्मा का अवतार बताकर लोगों को ठगते खाते रहे हैं तथा उनके सम्प्रदाय चालू हैं। पौराणिकों ने जो परमात्मा के अवतार होने का जाली सिद्धान्त बौद्ध व जैनों के २४ तीर्थंकरों के मुकाविले के लिए गढ़ा था उसी का लाभ उठाकर आज भी एक दर्जन धूर्त अपने को परमात्मा का साक्षात् अवतार बता रहे हैं। उनमें से कई मर भी चुके हैं और कुछ मरने के लिए किनारे पर हैं।

देश के दुर्भाग्य से इस देश में निकम्मे लोगों का एक प्रथक सम्प्रदाय अद्वैतवादियों के नाम से चालू है। ये लोग अपने को ब्रह्म (परमात्मा) तथा संसार को झूठा बताते हैं कहते हैं कि संसार को जो प्रतीत होता है वह स्वप्न के समान झूठा है। अर्थात् कहीं कुछ भी नहीं है। सभी प्राणी स्वप्न देख रहे हैं।

यह लोग संसार को निकम्मा बनाते चेले चेलियां फंसाते, पैसे ठगते, 'शिवोऽहं' 'सोऽहं' 'तत्वमसि', 'अहंब्रह्मास्मि', 'अयमात्मा ब्रह्म' रटाते व उसी का जाप कराते, साक्षात् पाखन्ड प्रसार के ठेकेदार बने फिरते हैं। बढ़िया २ माल स्वयं खाते ठाठ से रहते, चेले चेलियों में मौज करते, खास कर गांवों व कस्बों के लोगों को गुमराह करते फिरते हैं। इनका एक अड्डा चित्रकूट पर पीली कोठी में है। इन्हों

में से कुछ प्रचारकों ने प्रथक होकर 'शिवोऽहं' के जाप का प्रचार करा दिया है। यदि इन ब्रह्म बनने वालों को बिच्छू काट खावे तो दवा के लिए तड़फते फिरते हैं, ज्वर आने पर दवायें खाते हैं। इनसे अपने शरीर की एक फुन्सी भी ठीक नहीं की जाती है एक मक्खी की टूटी टांग ये नहीं ठीक कर पाते हैं, नीम का एक पत्ता, फूल की एक पंखड़ी वा घास का एक पत्ता भी इनसे नहीं बन पाता है, निगाह कम होने पर चश्मा लगाते फिरते हैं। पर ब्रह्म बनने में इन्हें कोई शर्म-हया नहीं आती है।

संसार के किसी भी मत में कोई अपने को खुदा कहने का साहस नहीं कर सकता है पर हमारे यहां अपने को ब्रह्म बताने वालों को 'जगत् गुरु' शंकराचार्य की उपाधि से विभूषित किया जाता है और अज्ञानी हिन्दू इन परमेश्वर के विरोधी लोगों का आदर व अन्धानु-गमन करता फिरता है। इस हिन्दू की दशा धर्म के विषय में अत्यन्त दयनीय है। यह परमात्मा का भक्त बनने के स्थान पर स्वयं परमात्मा कहने में गौरव समझता है। हिन्दू के पतन की यह पराकाष्ठा है। यह नकली परमात्मा बनने वालों का आदर करता है और परमेश्वर की भक्ति से दूर भागता है।

एक समय पर जब जैन व बौद्धों को पराजित करने के लिए आद्य शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का एक सामयिक तर्क युक्त सिद्धान्त गढ़ा था और उनकी नवीन ढंग की युक्तियों से बौद्ध मत के विद्वान परास्त हुए थे। किन्तु उस सामयिक तर्क को हिन्दू धर्म में लोगों ने स्थाई धार्मिक सिद्धान्त बना लिया है। यह देश व वैदिक धर्म के लिए दुर्भाग्य की बात रही है। और अब तो यह इन लोगों का चेले-चेली भरती करने का व्यापारिक सम्प्रदाय बन गया है।

सम्प्रदायों व उनके अद्वैतवाद के कथित प्रमाण अद्वैतवाद

के समर्थन में दिए गए हैं उन पर सरल भाषा में हमने इस ग्रन्थ में समीक्षा प्रस्तुत की है। आशा है वह सभी को समझने में सुगम रहेगी। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने भी इस मत के सम्बन्ध में सत्यार्थ प्रकाश में सातवें तथा ग्यारहवें समुल्लासों में प्रकाश डाला है। विशेष उपयोगी होने से हमने उसे ज्यों का त्यों इस ग्रन्थ में अन्त में उद्धृत किया है ताकि इस मत के मिथ्या उसूलों के खन्डन करने में सभी उससे लाभान्वित हो सकें।

चित्रकूट के इसी सम्प्रदाय के आचार्य स्वामी अखण्डानन्द जी ने कुछ पुस्तकें भी लिखी हैं जो हमारे देखने में आई हैं। हमने उनमें से दो पुस्तकें भ्रान्ति निवारण' तथा 'अखण्ड सिद्धान्त' की मौलिक बातों का उत्तर इस पुस्तक में दे दिया है शेष निरर्थक बातों को छोड़ दिया है। इसमें 'भ्रान्ति निवारण' के उद्धरणों के आगे भ्रा० नि० तथा 'अखण्ड सिद्धान्त' के लिए अ० सि० अक्षरों का प्रयोग किया गया है।

आशा है अद्वैतवाद की भ्रान्ति मिटाने में विज्ञ पाठक इस पुस्तक को उपयोगी पावेंगे तथा इसका अज्ञान के निवारण के लिए अद्वैतवादियों में व्यापक प्रचार किया जावेगा।

कासगंज (उ०प्र०) निवेदक

ता० १—३—७०

आचार्य डा० श्रीराम आर्य

अद्वैतवाद मीमांसा

वेदों को भारतवर्ष के सदैव सभी ऋषि महर्षियों, विद्वानों, सभी शास्त्रकारों ने अपौरुषेय अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान माना है। सारी ही धर्माधर्म की व्यवस्थायें वेदों के आधार पर ही निश्चित की जाती रही हैं। धर्म के विषय में सभी सिद्धान्तों का निर्णय वेदों के ही आधार पर उन्हीं के प्रमाण से किया जाता रहा है। सभी दार्शनिक सिद्धान्तों का मूलाधार वेद ही रहे हैं। महाभारत काल तक इस देश में कोई भी सम्प्रदाय पैदा नहीं हो सका था क्योंकि वैदिक धर्म की व्यवस्था सर्वमान्य थी। सारे संसार में भारत से जो भी विचार धारायें फैली थीं उन सबके मूल में वैदिक सिद्धान्तों की झलक थी यह इतिहास से प्रमाणित है।

महाभारत के पश्चात् जब देश की अवस्था में गिरावट आई तो इस विशाल देश में केन्द्रीय नियन्त्रण न रहने से अनेक प्रकार के मत-मतान्तर देश के विभिन्न भागों में उत्पन्न हो गए। देवी देवताओं की कल्पना करके नाना प्रकार के सम्प्रदायों का उद्भव हो गया। एक ईश्वर के स्थान पर अनेक ईश्वरों की कल्पनायें कर ली गयीं और उनकी भक्ति करने को जनता को प्रभावित किया गया। अनेक प्रकार के साम्प्रदायिक ग्रन्थों का निर्माण निज सम्प्रदायों को प्रमाणिक बनाने के लिए किया गया और सारा देश एकेश्वरवाद के स्थान में बहु देवतावाद का समर्थक बन गया। देवताओं के सामने पशुओं की बलि दी जाने लगी, यज्ञों में नाना प्रकार के जीवों की यहाँ तक कि मनुष्यों तक की आहुतियां दी जाने लगीं। जो यज्ञ विश्वकल्याण का आधार व परमेश्वर की प्रार्थना उपासना के माध्यम थे जिनसे जल, वायु का शोधन, रोगों का निवारण तथा स्वास्थ्य का निर्माण किया जाता था वे

ही यज्ञ के मिथ्या कल्पित देवताओं के नाम पर साक्षात् भ्रष्टाचार तथा विश्व को हानि पहुंचाने का कारण बन गए। प्राणी मात्र के प्रति अहिंसा का व्यवहार नष्ट होकर प्राणियों के विनाश का व्यवहार चालू हो गया। अहिंसा परमोधर्मः का स्थान मद्य मांस मैथुन तथा हिंसा परमो धर्मः ने ले लिया।

देश में धर्म के नाम पर हिंसा का प्रचार देखकर उसके प्रतिकार के लिए बौद्ध धर्म की स्थापना की गई। बौद्ध धर्म स्वयं मांसाहार का समर्थक व प्रचारक रहा। बौद्ध मत के साथ ही जैन मत का प्रचार हुआ। वे इन मतों के संस्थापक संस्कृत के प्रौढ़ पाण्डित्य से वंचित थे अतः वे इन हिंसावादी सम्प्रदायों से वेदार्थों पर टक्कर नहीं ले सके। सम्प्रदायवादी हिंसकों ने वेदों के मन्त्रों को तोड़ मरोड़ कर जो भी अर्थ हिंसा के समर्थन में ईश्वराज्ञा के रूप में उपस्थित किए उनका खण्डन बौद्ध व जैन नहीं कर सके तो इन्होंने ईश्वर व वेदों को मानने से ही इन्कार कर दिया। कालान्तर में इन दोनों सम्प्रदायों का प्रभाव इतना फैला कि सारा भारतवर्ष इनकी लपेट में आकर नास्तिक बन गया। इन सम्प्रदायों के अत्याचारों से जनता उत्पीडित होने लगी तो कुमारील भट्ट ने इनके विरुद्ध अपनी आवाज उठाई और मतों का घोर खंडन करना प्रारम्भ कर दिया। इससे उन सम्पदायों में भारी खलबली मच गई। संस्कृत के इस प्रौढ़ विद्वान के वेदों के समर्थन के सामने जैन व बौद्धों के पैर उखड़ने लगे और आशा होने लगी कि वैदिक धर्म की देश में पुनः स्थापना हो सकेगी। किन्तु इस महान तेजस्वी अद्वितीय विद्वान का शीघ्र ही निधन हो गया।

कुमारील के पश्चात् मद्रास प्रान्त से श्री शंकराचार्य जी ने बौद्ध व जैनों के विरुद्ध आवाज उठाई। उन्होंने नवीन प्रकार के तर्कों के आधार पर सारे देश में जैन बौद्ध मतवालों को शास्त्रार्थों में पराजित किया। अनेक राजाओं ने इनके विचारों को अंगीकार किया और

शंकर स्वामी के वेदान्त मत के प्रचार में योग दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष में से जैन व बौद्ध मत का लगभग पूर्ण विनाश हो गया।

शंकर स्वामी की गति दर्शन व उपनिषदों तक थी। वेदों में उनकी विशेष गति नहीं थी। फिर भी उनकी युक्तियां विपक्षियों के लिए अकारण थीं। उनकी स्थापना थी कि विश्व में केवल एक चैतन्य ब्रह्म की ही सत्ता है। ब्रह्म ही अपने को अज्ञान से जीवात्मा मान रहा है। दृश्यमान जगत वस्तुतः है ही नहीं। यह सब कुछ जो हमें दीखता वा अनुभव होता है वह स्वप्न है। जैसे स्वप्न के दृश्यमान पदार्थ वस्तुतः कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं रखते हैं वैसे ही जो कुछ भी इन्द्रियों द्वारा हमें दृश्यमान जगत व उसके पदार्थों की अनुभूति प्रत्यक्ष में हो रही है उसका वस्तुतः कोई अस्तित्व नहीं है, यह सब जीवों का (ब्रह्म का) स्वप्न है। अपनी इस स्थापना के पक्ष में शंकर स्वामी ने अनेक प्रकार के तर्क दिए हैं जो कि विचारणीय हैं।

आज हमारे देश में शंकर स्वामी के तर्कों के आधार पर नवीन वेदान्त के नाम से अनेक साधु व संस्थायें प्रचार कर रही हैं। ये लोग परमात्मा के स्थान पर स्वयं को ही ब्रह्म बताकर चेले मूँड़ते फिरते हैं।

वस्तुतः ये सारी स्थापनायें वैदिक धर्म के विपरीत हैं और बालू की भीत के समान हैं जो कि तर्क की कसोटी पर कसने पर एक क्षण के लिए भी स्थिर नहीं रहती हैं। हम इस पुस्तक में इस नवीन वेदांत के सिद्धान्तों की तर्क व प्रमाणों से परीक्षा करेंगे।

जगत स्वप्नवत मिथ्या नहीं

स्वप्न क्या है इसे समझना आवश्यक है। जागृत अवस्था में जीव जो भी दृश्य कभी ध्यान पूर्वक देखता है अथवा जिन बातों पर ध्यान पूर्व विचार कभी करता है उन सभी बातों व वस्तुओं के संस्कार जीवों के लघु मस्तिष्क में संग्रहीत होते रहते हैं। जब प्राणी जागृतावस्था

से हटकर स्वप्नावस्था में आता है तो उसका तार्किक मस्तिष्क शान्त होता है तथा लघु मस्तिष्क कार्यरत हो जाता है। लघु मस्तिष्क का स्थान सिर में वहां पर होता है जहां शिखा होती हैं। यह गौ के खुर के आकार का होता है। इसलिए इसके संरक्षण के लिए गौ के खुर के आकार की व उतनी ही बड़ी चोटी रखाने का शास्त्रकारों ने विधान किया है।

स्वप्नावस्था में लघुमस्तिष्क में संग्रहीत संस्कार कभी क्रमबद्ध रूप से व कभी अस्त व्यस्त रूप से जीवों के सामने सिनेमा के चित्र के दृश्यों के समान आते हैं। यह स्वप्न भी यह बताते हैं कि जो बातें स्वप्न में दीखती हैं वे बातें तथा दृश्य वास्तविक सत्ता के रूप में दृष्टा जीव के द्वारा जागृत अवस्था में कभी न कभी देखे या सुने गये हैं। उनका स्वतन्त्र अस्तित्व अवस्य रहा होता है तथा दृष्टा प्राणी स्वप्नावस्था से पूर्व कभी जागृत अवस्था में अपनी पंचज्ञानेन्द्रियों द्वारा उनका साक्षात्कार कर चुका होता है।

चैतन्य दृष्टा और जगत के दृश्य दोनों पृथक-पृथक स्वतन्त्र सत्तायें होती हैं। यदि दृश्य का अस्तित्व नहीं होगा तो दृष्टा किसे देखेगा और संस्कार किसके बनेगें? तथा यदि चेतन्य दृष्टा नहीं होगा तो दृश्यों को कौन देखेगा? इस प्रकार सिद्ध है कि दृष्टा जीवात्मा तथा दृश्य की स्वतन्त्र सत्ता, दोनों का अस्तित्व होने से अद्वैत सिद्धान्त मिथ्या हो जाता हैं। पुर्नजन्म प्रत्यक्ष होने से जीवात्मा की परमात्मा से स्वतन्त्र नित्य सत्ता भी सिद्ध है।

रज्जू और सर्प का दृष्टान्त

कहा जाता है कि जैसे अन्धेरे में रस्सी को देखकर सर्प का भ्रम होता है वैसे ही अज्ञान से जीवों को अपने में जगत का भ्रम हो जाता है। किन्तु यह तर्क भी मिथ्या है। रस्सी और

सर्प दोनों का अस्तित्व होता है। दृष्टा ने दोनों को कभी देखा हुआ होता है और उनके संस्कार मस्तिष्क में रहते हैं अंधेरे में इस रस्सी में सर्प का धोखा हो जाता है। यदि दृष्टा ने कभी सर्प न देखा होगा तो वह रस्सी और सर्प के सादृश्य को जान ही नहीं सकेगा। मिथ्या प्रतीत तभी होती है जब दोनों का पूर्व से ज्ञान हो; दोनों का अस्तित्व हो, तभी एक के धोखे में दूसरे का भ्रम सम्भव हो सकता है। जैसे चांदी के स्वरूप व चमक की जानकारी पूर्व होने से कभी सीप की चमक को देखकर चांदी की प्रतीत भ्रम से हो जाती है। इससे भी चांदी के अस्तित्व का समर्थन होता है। इसी प्रकार जगत का अस्तित्व होने से स्वप्न में इसके दृश्यों के दर्शन होते हैं। इससे द्वैत की सिद्धि स्वयं हो जाती है। जगत का नाम, रूप और व्यवहार सभी सत्य है। सभी का अस्तित्व सत्य है। इस सत्य को असत्य वा भ्रान्ति मानना व बताना अज्ञानता है।

मकड़ी और जाले का दृष्टान्त

अद्वैतवादी लोग कहा करते हैं कि जैसे मकड़ी अपने में ही जाला बनाती है और फिर उसे अपने अन्दर समेट लेती है वैसे ही यह सारा विश्व ब्रह्म में से निकलता है और ब्रह्म में ही समा जाता है। ब्रह्म ही इसका निमित्तोपादन कारण है, यह सब ब्रह्म ही है, उससे पृथक कुछ नहीं है।

यह तर्क भी निःसार है। मकड़ी के भौतिक शरीर में उसका जीवात्मा व्याप्त रहता है। शरीर व जीवात्मा दो पृथक-२ स्वतन्त्र सत्तायें हैं। दोनों में व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध होता है। जीवात्मा (मकड़ी के) अपने शरीर में से जाला निकालता है तो जाले का निमित्त कारण मकड़ी का जीवात्मा तथा उपादान कारण मकड़ी का शरीर होता है। इसी प्रकार चैतन्य ब्रह्म जो कि विश्व में व्याप्त सत्ता है भौतिक प्रकृति के परमाणुओं से अपने मध्य में जगत की रचना करता है और प्रलयकाल

में कार्यरूप जगत को पुन: परमाणरूप से अपनी सत्ता में स्थिर रखता हैं। इस प्रकार अद्वैतवादियों का यह तर्क भी उनका समर्थन नहीं है। इससे भी चैतन्य व्यापक ब्रह्म तथा भौतिक प्राकृतिक जगत तथा जीवात्मा तीनों का अस्तित्व स्वयं सिद्ध है।

ब्रह्म जगत का निमित्तोपादान कारण नहीं है

जड़ और चैतन्य दो सत्तायें विश्व में स्पष्ट हैं। चैतन्य ब्रह्म की सत्ता जड़ भौतिक जगत में प्रत्येक परमाणु में नियमित रूप से क्रियाशील दिखाई देती है। ब्रह्म स्वयं चैतन्य सत्ता है। यदि वही उपादान कारण हो तो उससे उत्पन्न होने वाली वस्तु भी चैतन्य ही होनी चाहिए। किन्तु प्रत्यक्ष में भौतिक जगत जड़ स्पष्ट है उसमें स्वत: चैतन्यता एवं ज्ञान का अभाव है। इससे स्पष्ट है कि जड़ जगत का उपादान कारण भी चैतन्य ब्रह्म न होकर जड़ पंचभौतिक प्रकृति है। जड़ से जड़ की उत्पत्ति होगी चैतन्य से चैतन्य की होगी। जड़ से चैतन्य व चैतन्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। जो गुण उपादान कारण में होंगे। वही उसके कार्य में आवेंगे। जैसे स्वर्ण के गुण स्वर्ण के आभूषण में होते हैं, चीनी से बने पदार्थों में चीनी के गुण होते हैं। इसलिए यदि ब्रह्म जगत् का निमित्तोपादान कारण होता तो सारा जगत् चैतन्य होना चाहिए। क्योंकि कारण का गुण उसके कार्य में होना चाहिए। जब ब्रह्म में जड़त्व गुण नहीं है तो जड़ पदार्थों की उत्पत्ति में उपादान कारण ब्रह्म नहीं माना जा सकता है। ब्रह्म केवल निमित्त कारण है, वह अपने से पृथक स्वतन्त्र सत्ता रखने वाली प्रकृति से विश्व की रचना करता है। इस प्रकार जगत ही ब्रह्म है यह कल्पना नि:सार हो जाती है। तथ्य यह है कि ब्रह्म जगत का निमित्त कारण होते हुए उसके अन्दर तथा बाहर सर्वत्र व्यापक हो रहा है। व्यापक और व्याप्य सम्बन्ध ब्रह्म और जगत में होने से दोनों की स्वतन्त्र सत्तायें स्पष्टतया सिद्ध हैं। अत: नवीन वेदान्तियों का जगत का ब्रह्म को निमित्तोपादान कारण बताना मिथ्या है।

जड़ भौतिक परमाणुओं के संयोग से कार्यरूप जगत को उत्पत्ति प्रत्यक्ष में सिद्ध है। प्रत्येक पदार्थ में ज्ञान पूर्वक रचना यह प्रगट करती है कि उसको बनाने वाली कोई ज्ञानवान सत्ता है। पदार्थों के निर्माण में नियम एवं व्यवस्था भी स्पष्ट है जो यह बताती है कि पदार्थों को बनाने वाली सत्ता ज्ञानवान है जो किन्हीं विशेष नियमों के अन्तर्गत रचना करती है। रचना करने वाली सत्ता रचे गए पदार्थं से पृथक अस्तित्व रखती है। यदि रचना की क्रिया बाहर से होती है तो रचयिता सत्ता पदार्थं से बाहर अस्तित्व रखती है और यदि रचना की क्रिया अन्दर से होती है तो वह सत्ता पदार्थ के अन्दर व्यापक होती है। परमेश्वर की सारी रचना पदार्थों में अन्दर से होती है जो कि उसके सर्व व्यापकत्व को प्रगट करती है। जड़ पदार्थ ज्ञानशून्य अचेतन होने से अपने में ज्ञानपूर्वक एवं नियम पूर्वक रचना नहीं कर सकते हैं। अतः सिद्ध है कि मूल कारण प्रकृति से कार्यरूप जगत की रचना करने वाला परमेम्वर उससे पृथक सत्ता रखता है वह निमित्त कारण तो है किन्तु निमित्तोपादान कारण नहीं हो सकता है। ज्ञानवान कर्ता केवल चैतन्य ही हो सकता है क्योंकि ज्ञान चैतन्य का गुण होता है अतः जड़ प्रकृति वा कार्यरूप जड़ जगत चैतन्य कर्ता ब्रह्म से पृथक होगा वह स्वयं कार्यरूप जगत का निमित्तकारण नहीं हो सकता है वह उपादान कारण हो सकता है और हैं। दृष्टान्त रूप से इस विषय को ऐसे समझा जा सकता है कि मिट्टी से कुम्भकार घड़ा बनाता है यदि मिट्टी न हो तो घड़ा नहीं बन सकेगा और यदि कुम्भकार न हो तो मिट्टी स्वयं घड़े के रूप में परिवर्तित नहीं हो सकेगी। घड़े के लिए कुम्भकार निमित्त व मिट्टी रूपी उपादान कारण की अपेक्षा अवश्य होगी। मिट्टी के अभाव में कुम्भकार स्वयं घड़ा नहीं बन जावेगा। इसी प्रकार कार्य जगत में परमात्मा निमित्त कारण तथा प्रकृति उपादान कारण है। न तो प्रकृति ही निमित्तोपादान कारण है और न परमात्मा ही निमित्तो-पादान कारण है। निमित्त व उपादान कारणों की सत्ता पृथक-पृथक

होने से कार्य वा कारण रूप जगत ब्रह्म नहीं हो सकता है यह सुतरां सिद्ध है।

जीव और ब्रह्म

नवीन वेदान्ती कहते हैं कि जीवात्मा स्वयं ही, ब्रह्म है। जीव और ब्रह्म में अद्वैतभाव है जैसे स्वर्ण का अंश वा खन्ड भी स्वर्ण ही कहाता है वैसे ही जीवात्मा ब्रह्म का अंश होने से ब्रह्म ही है। जीव और ब्रह्म (परमेश्वर) में अंश अंशी सम्बन्ध हैं। इस विषय में वे स्वपक्ष में निम्न प्रमाण उपस्थित करते हैं—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी,
चेतन अमल सहज सुखराशी।

सो माया बस भयउ गुसाईं,
बन्ध्यो वीर मरकट की नाईं।

(गोस्वामी तुलसीदास)

अर्थ—जीवात्मा परमात्मा का अंश, अविनाशी, चैतन्य, निर्मल, स्वाभाविक सुख सम्पन्न है। वह माया के वशीभूत होकर बन्दर की तरह नाचता रहता है।

गीताकार श्रीकृष्ण के मुंह से कहलवाता है—

ममै वांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्टानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ।।गीता १५।७।।

अर्थ यह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है। यही माया में स्थित हुई इन्द्रियों को आकर्षित करता है।

श्रीकृष्ण जी भागवत में कहते हैं—

मयेश्वरेण जीवेन गुणेन गुणिना बिना
सर्वात्मनापि सर्वेण न भावे विद्यते क्वचित्।भाग ११।१६।३८।

अर्थ—मैं ही ईश्वर हूं, मैं ही जीव हूं, मैं ही गुण हूं और मैं ही गुणी हूं। मैं ही सबकी आत्मा हूं, मैं ही सब कुछ हूं। मेरे अतिरिक्त और कोई भी पदार्थ कहीं भी नहीं है।

ज्ञानं विवेको निगमस्तपश्च

प्रत्यक्ष मैतिह्यमथाअनुमानम् ।

आद्यन्त योरस्य यदेव केवलं

कालश्च हेतुश्च तदेव मध्ये ॥१८॥

यथा हिरण्यं स्वकृतं पुरस्तात्

पश्याच्च सर्वस्य हिरण्यमयस्य ।

तदेव मध्ये व्यवहार्यं माणं

नाना पदेशं रहुसस्य तद्वत् ॥१६॥

न यत पुरस्तादुतयन्न पश्चा-

न्मध्ये च तन्न व्यपदेशमात्रम् ।

भूतं प्रसिद्धं च परेणयद् यत्

तदेव तत् स्यादिति मे मनीषा ॥२१॥

अविद्य मानोऽप्यवभाषते यो

वैकारिको राजससर्ग एषः ।

ब्रह्म स्वयंज्योतिरतो विभाति

ब्रह्मेन्द्रियार्थात्म विकार चित्रम् ॥२२।

यदि स्म पश्यत्य सदिन्द्रियार्थं

तानानुमानेन विरुद्ध मन्यत् ।

न मन्यते वस्तुतया मनीषी

स्वाप्नं यथोत्थाय तिरोदधानम् ॥३२॥

यन्नामाकृतिभिर्ग्राह्यं पञ्चवर्णमबाधितम् ।

व्यर्थे नार्थवादो ये द्वयं पन्डित मानिनाम् । ३७॥

।भागवत स्कन्द ११ अ०२८॥

अर्थ—ज्ञान, विवेक, शास्त्र तप, प्रत्यक्ष इतिहास अनुमान आदि प्रमाणों से यही परिणाम निकलता है कि संसार आदि में जो था, प्रलय के बाद जो रहेगा (जो इसका मूल कारण और प्रकाशक है) वही परमात्मा मध्य में भी है ।१८।

जैसे स्वर्ण से आभूषण बनते हैं, जब वे गहने नहीं बने थे तब भी

स्वर्ण ही था, जब वे नहीं रहेंगे तब भी स्वर्ण ही रहेगा। इसलिए जब मध्य में उनके स्वर्ण आभूषणादि के रूप में व्यवहार है तब भी स्वर्ण ही रहेगा। इसी प्रकार जगत के आदि अन्त और मध्य में मैं ही हूं।१९।

जो उत्पत्ति से पूर्व नहीं था और प्रलय के पश्चात् भी नहीं रहेगा, ऐसा समझना चाहिए कि बीच में भी यह नहीं है, कल्पना मात्र है। यह सत्य है कि जो पदार्थ जिससे बनता व प्रसिद्ध होता है वही उसका वास्तविक स्वरूप है, यह मेरा निश्चय है।२१।

यह जो विकारमयी राजस सृष्टि है, यह न होने पर भी दीख रही है। यह स्वयं प्रकाश ब्रह्म ही है। इसलिए इन्द्रिय, विषय, मन और पञ्चभूतादि जितने चित्र विचित्र नाम रूप हैं उनके रूप में ब्रह्म ही प्रतीत हो रहा है।२२।

यदि किसी को इन्द्रियों से प्रतीत होने वाले विषय वा जगत के पदार्थों की प्रतीत होती है तो वह इन्हें परमात्मा से भिन्न नहीं मानता। जैसे स्वप्न में देखे हुए दृश्यों वा पदार्थों की नींद से जाग जाने पर विद्वान सत्य नहीं मानते हैं।२३।

अनेक पन्डिताभिमानी लोग कहते हैं कि यह पञ्च भौतिक द्वैत जगत विभिन्न नामों और रूपों में इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किया जाता है, इसलिए सत्य है। किन्तु यह तो अर्थहीन वाणी का आडम्बर मात्र है। क्योंकि तत्वतः तो इन्द्रियों की सत्ता ही पृथक सिद्ध नहीं होती, फिर वे किसी को प्रमाणित कैसे करेंगी।३७।

समीक्षा—भागवतकार के उपरोक्त तर्क लोगों को भ्रम में डालने वाले हैं और वस्तुतः सर्वथा निःसार है जो आदि में था, अन्त में रहेगा वह मध्य में भी है यह बात ठीक है किन्तु इससे नव वेदान्त की कोई संगति नहीं है। स्वर्ण दृष्टान्त वेदान्त के पक्ष का समर्थक न होकर त्रैतवाद के पक्ष का पोषक है। उपादानकारण स्वर्ण से कार्य पदार्थ (आभूषण) बनाने वाला निमित्त कारण स्वर्णकार अनेक यन्त्रों व औजारों से (जो साधारण कारण होते हैं) कार्यरूपी आभूषण बनाता है इस प्रकार निमित्त कारण स्वर्णकार हुआ, कार्य आभूषण हुए तथा

उपादान कारण स्वर्ण हुआ। कार्य में उपादान कारण के गुण यथावत वर्तमान रहते हैं। इसी प्रकार जड़ जगत रूपी कार्य को उपादान कारण जड़ प्रकृति नित्य होने से कार्य जगत की उत्पत्ति से पूर्व विद्यमान थी कार्य जगत की प्रलय के पश्चात भी वह विद्यमान रहेगी। तथा जड़ प्रकृति के कार्य रूप में लाने वाला निमित्त कारण चैतन्य गुणधारी परमात्मा भी जगत रचना से पूर्व जगत के मध्य में स्थिति काल में तथा प्रलय के बाद वर्तमान रहेगा। बिना स्वर्णकार के स्वर्ण स्वयं जैसे आभूषण नहीं बन जाता है, ठीक उसी प्रकार जड़ प्रकृति रूपी उपादान कारण स्वयं बिना निमित्त कारण परमेश्वर के कार्य जगत में परिवर्तित नहीं हो जाता है।

भागवतकार का यह कहना कि परमात्मा ही जगत का निमित्तोपादान (निमित्त व उपादान दोनों) कारण है भी मिथ्या है। परमात्मा चैतन्य गुणाधारी है तो जगत भी चैतन्य गुण वाला होना चाहिए था जैसे कि स्वर्ण के आभूषण में उसके उपादान कारण स्वर्ण के गुण यथावत मिलते हैं। जड़त्व परमात्मा का गुण नहीं है। सम्पूर्ण कार्य रूपी जगत जड़ प्राकृतिक परमाणुओं से बना हुआ है जो कि परमात्मा के गुण नहीं हैं। अतः भागवतकार का परमात्मा को निमित्त कारण के स्थान पर निमित्त व उपादान दोनों कारण बनाना मिथ्या है और उसी के तर्क से खण्डित हो जाता है।

श्लोक २२ की भी स्थापना मिथ्या है। कार्य रूपी राजसी जगत एक स्थान पर है और उसका दृष्टा जीव दूसरा है। दृष्टा और दृश्य दोनों का अस्तित्व है और सत्य है। दृश्य का निर्माता वा रचियता तीसरी सत्ता है जो कि परमात्मा है। तीनों का अस्तित्व श्लोक के अर्थ से सिद्ध है। तब उसे भ्रम बताना भी मिथ्या है। यदि सृष्टि व उसके दृश्य का अस्तित्व नहीं है तो फिर दृष्टा का अस्तित्व भी स्वीकार नहीं हो सकेगा। यदि ब्रह्मा ही दृष्टा होगा, ब्रह्म ही दृश्य होगा और ब्रह्म को ही दृश्य को देखकर स्वप्न के दृश्यों के समान चैतन्यावस्था में देखे गए दृश्यों की भ्रान्ति मानी

जावेगी तो सर्वज्ञ सर्व व्यापक निर्भ्रान्त ब्रह्म को अविद्या दोष ग्रस्त एवं भ्रान्त मानना पड़ेगा और फिर यह मानना पड़ेगा कि जो ब्रह्म को भ्रान्त मानता है वह स्वयं भ्रान्त मस्तिष्क वाला एवं महा मूढ़ है।

श्लोक ३२ की स्थापना भी मिथ्या है । स्वप्न जाग्रतावस्था में देखे गये पदार्थों के लघुमस्तिष्क में विद्यमान पूर्व संस्कारों के आधार पर ही दीखते हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि स्वप्न देखने वाले का अस्तित्व है, जिन पदार्थों को स्वप्न में द्रष्टा देखता है उनका भी अस्तित्व है या था। इसी प्रकार जगत का अस्तित्व है उसके दृश्यों के दृष्टा का भी अस्तित्व है । इससे अद्वैत की स्थापना का स्वतः निराकरण हो जाता है।

श्लोक ३७ की भी स्थापना मिथ्या है । क्योंकि इन्द्र जीवात्मा अपने ज्ञान प्राप्त करने तथा भौतिक जगत के पदार्थों का उपभोग करने के लिए जिन शारीरिक साधनों का उपयोग करता है उनको इन्द्रियां कहते हैं। तो जब शरीरस्थ जीवात्मा का अस्तित्व सिद्ध है तो उसके साधन रूप इन्द्रियां भी विद्यमान है और उनसे प्राप्त ज्ञान भी सत्य है भागवतकार ने निरर्थक स्थापना द्वारा जो भ्रान्ति अद्वैत वाद के समर्थन में फैलाई है वह उसी के द्रष्टान्तों व स्थापनाओं से कट जाती है।

ऊपर के प्रमाणों में दो बातों का वर्णन है। एक तो यह कि संसार के सारे ही प्राणी ब्रह्म हैं जीवात्मा व परमात्मा में अंश अंशी सम्बन्ध है, परमात्मा का ही खण्ड जीवात्मा है और इस लिए जैसे स्वर्ण का अंश भी स्वर्ण ही होता है वैसे ही परमात्मा का अश (खण्ड) होने से जीवात्मा भी परमात्मा ही है। दूसरी बात वह कहता है कि जो कुछ भी जगत में इन्द्रियों के सान्निध्य से प्रतीत होता है वह सब स्वप्नवत मिथ्या है। प्रतीत होने वाले पदार्थों की कोई वास्तविक सत्ता नहीं है। सत्ता केवल परमात्मा की है और प्रतीत करने वाला तथा प्रतीत होने वाला यह सब परमात्मा ही है उससे भिन्न कहीं कुछ भी नहीं है।

यह दोनों ही तर्क विचारणीय हैं। हमारी दृष्टि में दोनों ही तर्क निःस्सार हैं। यदि जीवात्मा परमात्मा का अंश है तो बताना होगा कि यह अंश (जीवात्मा) अपने मूल (अंशी) परमात्मा से प्रथक होकर जीवात्मा क्यों बना ? किसने इसको परमात्मा में से काटकर प्रथम टुकड़े के रूप में अस्तित्व प्रदान किया ? क्या परमात्मा के भी खण्ड होना सम्भव है ? यदि हां तो जब परमात्मा के एक अंश के खण्ड वा विभाग हो सकते हैं तो सम्पूर्ण परमात्मा के भी विभाग हो कर वह स्वतः नाशवान हो जावेगा और तब यह भी मानना पड़ेगा कि परमात्मा भी अनेक अवयवों (खंडों) के समूह से बना है, क्यों कि जिसके अवयव होते हैं उसी का विभाग भी हो सकता है। जो संयोग से बना होता है उसकी उत्पत्ति भी काल विशेष में होती है और उत्पन्न धर्म वाली प्रत्येक सत्ता शादि व शान्त होती है किन्तु परमात्मा अनादि अनन्त है अतः वह उत्पत्ति विनाश के धर्म से रहित है। जब ऐसा है तो उसके अवयव हैं यह भी नहीं माना जा सकता है। तब जीवात्मा को परमात्मा का अंश भी सिद्ध नहीं किया जा सकता है।

यदि जीवात्मा परमात्मा अंश का होता तो उसमें और परमात्मा के गुणों में सादृश्य होना चाहिए। स्वर्ण के अंश में जो गुण होंगे वही उसके बड़े भाग में भी होंगे तथा जो गुण बड़े भाग में होंगे वही उसके अंश में भी अवश्य होंगे। यही दृष्टान्त भागवतकार ने दिया है। तब विपक्ष को यह सिद्ध करना होगा कि परमात्मा व जीवात्मा में गुणों में पूर्ण सादृश्य है। दोनों सर्वज्ञ हैं, दोनों सर्व शक्तिमान हैं, दोनों में अविद्यादि दोष नहीं है। किन्तु प्रत्यक्ष में यह सादृश्यता सिद्ध नहीं की जा सकती है क्योंकि जीवात्मा अल्पज्ञ, एक देशीय, अल्प शक्तिमान, सुख दुःखों का भोक्ता आवागमन के चक्र में फंसा हुआ नाना प्रकार के कर्मों का कर्ता व तदनुसार फलों का भोगने वाला क्लेश कर्म व उनके बिपाक का भोगने वाला है, जबकि ईश्वर इन सब से प्रथक सर्व व्यापक, सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान, क्लेश कर्म व उनके विपाक से रहित,

जगत की उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय की व्यवस्था करने वाला, जीवों को कर्मानुसार फल प्रदाता, अनन्त विश्व का आधार है। जब दोनों के गुणों में कोई भी समानता सिद्ध नहीं की जा सकती है तो दोनों में अंश अंशी सम्बन्ध बताना भी उन्मत्त प्रलापवत् है। चाहे वह बात किसी के भी द्वारा कही जावे या किसी भी ग्रन्थ में लिखी हो सर्वथा मिथ्या है और अमान्य है।

घटाकाश मठाकाश का दृष्टान्त

विपक्षी तर्क प्रस्तुत करता है कि जैसे आकाश व्यापाक है और महान है किन्तु घड़े के अन्दर आने वाले आकाश की संज्ञा घटाकाश हो जाती है इसी प्रकार शरीरान्तर्गत परमात्मा का जो भाग आ जाता है। वह अज्ञान से अपने को जीवात्मा समझने लगता है जैसे घड़ा टूटने पर घड़े का आकाश महदाकाश में मिलकर एकीभूत हो जाने से घटाकाश की उपाधि से रहित हो जाता है वैसे ही शरीरान्त के पश्चात् जीवात्मा रूपी ब्रह्म महद् ब्रह्म में मिलकर पूर्ण ब्रह्म बन जाता है।

विचारने पर हम विपक्षी के इस तर्क को अति निर्बल पाते हैं। क्योंकि हम देखते हैं कि जीवों के स्वकर्मानुसार नित्य ही लोक में पुनर्जन्म होते हैं। जीव एक शरीर को त्यागकर बार२ अन्यत्र जन्म धारण करते हैं और अनेकों अपने पूर्वजन्म वा कई जन्मों की स्मृतियां भी रहती हैं जो यह सिद्ध करती है कि जीवात्मा की स्वतन्त्र नित्य सत्ता है। यदि घड़े के टूटने के बाद घड़े के आकाश के महदाकाश में मिलने के समान शरीरोपरान्त जीवात्मा का भी स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त हो जाता तब तो विपक्षी के दृष्टान्त का कुछ मूल्य हो सकता था किन्तु जीवों के पुनर्जन्म के चक्र में घूमने से उसका घटाकाश वाला दृष्टान्त निरर्थक हो जाता है।

ब्रह्म और अविद्या

विपक्षी कहता है कि चैतन्य ब्रह्म अविद्या से अपने को जीव

मानने लगता है तो पूछना यह है कि यह अविद्या अथवा माया का ब्रह्म से सम्बन्ध नित्य है या अनित्य है। यदि नित्य है तब तो कभी भी ब्रह्म अविद्या से मुक्त नहीं हो सकेगा क्योंकि नित्य सम्बन्ध सर्व कालिक व स्थाई होता है। यदि नित्य सम्बन्ध माना जावेगा तो ब्रह्म की नित्य पवित्र एवं सर्वज्ञता पर आक्षेप होगा और वह अविद्या दोष से ग्रस्त होने से दोष युक्त बन जावेगा। जो कि ब्रह्म के स्वाभाविक गुण से विपरीत है। क्यों कि केवल ब्रह्म की ही सत्ता है जिसे नित्य पवित्र एवं सर्वज्ञ माना गया है।

यदि ब्रह्म और माया (अविद्या) का सम्बन्ध ब्रह्म को बाद को लगा माना जावेगा तो प्रश्न होगा कि सर्व शक्तिमान, सर्वोपरि सर्वज्ञ सत्ता पर अविद्या या माया अथवा जड़ प्रकृति प्रभावी कैसे हो गई? क्या ब्रह्म इतना दुर्बल है कि उस पर अविद्या या मूर्खता अथवा जड़ प्रकृति के मोह का प्रभाव भी हो सकता है? विरक्त भावना वाले पुरुषों पर जब मोह माया का प्रभाव नहीं होता है तो ब्रह्म उसके चक्कर में आगया यह कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति नहीं मान सकता है। माया (प्रकृति) ब्रह्म के आश्रित तो हो सकती है क्यों कि ब्रह्म प्रकृति का नित्य स्वामी है किन्तु जड़ प्रकृति अपने स्वामी चैतन्य ब्रह्म पर प्रभावी नहीं हो सकती है।

यदि ब्रह्म के एक अंश जीवात्मा पर अविद्या का प्रभाव होना विपक्षी मानता है तो उसके इस तर्क पर प्रश्न होगा कि जब ब्रह्म के एक अंश में विकार होगा तो सम्पूर्ण ब्रह्म भी विकारी क्यों नहीं माना जावेगा और जो विकारी सत्ता होगी वह नाशवान होगी। तब तो वेदान्ती को ब्रह्म को भी नाशवान एवं विकारी सत्ता मानने पर विवश होना पड़ेगा। सर्वज्ञ शुद्ध ब्रह्म के नित्य गुणों में परिवर्तन मानने से ब्रह्म गुणों की अपेक्षा से ब्रह्म ही नहीं रह जावेगा। इस प्रकार नवीन वेदान्तियों का यह तर्क भी निःसार सिद्ध है।

क्या जगत मिथ्या है ?

नवीन वेदान्ती जगत को स्वप्नवत मानते है जैसा कि भाग-

वतकार ने लिखा है। किन्तु जगत मिथ्या अर्थात् स्वप्नवत नहीं है। जगत जीवों का कर्म क्षेत्र है, चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष तक इसके स्थिर रहने की अवधि है। इसकी उत्पत्ति व स्थिति व प्रलय का क्रम अनादि काल से चालू है यह नित्य सत्य है। वेदान्ती माँ के गर्भ में था, वहीं उसके शरीर की रचना हुई, जन्म हुआ, मां का स्तन पान करके, जगत के पदार्थों का सेवन करके वह बड़ा हुआ, स्कूल में जाकर वह गुरु के डन्डे खा-खाकर पढ़ा, टट्टी जाता है, भोजन करता है, हवा में वह स्वांस लेता है कपड़े पहिनता है, शादी करके पत्नी लाता है, विषय भोग करके बच्चे पैदा करता है, चलता फिरता है, बातें करता है, बीमार पड़ने पर रोता चिल्लाता है, वैद्य डाक्टरों के यहां जाकर दवायें खाता है, बिच्छू के काटने पर चीखता है, मौत से डरता है, आग से जलने पर उछल पड़ता है स्नान करता है, भजन करता है, यह सारे काम क्या वह ख्वाब में किया करता है, ? रेलों का चलना हवाई जहाजों की उड़ानें, सूर्य व चाँद का प्रकाश, सर्दी गर्मी, वर्षा, आंधी क्या यह सब स्वप्न की बातें हैं ? क्या इनका कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है ? क्या जिस पृथ्वी पर वेदान्ती चलता है ? उसका कोई अस्तित्व नहीं है ? क्या वह स्वप्न के समान मिथ्या हैं ? क्या वेदान्ती की आंख नाक मुंह, दांत, पेट पीठ, हाथ पैर भी स्वप्न के समान अस्तित्व हीन हैं ? क्या कहीं इन सबको स्वप्नवत् मिथ्या बताने वाला वेदान्ती वा भागवतकार पागल तो नहीं हो गया था ? क्या भागवत गीता, श्रीकृष्ण, अर्जुन, यह सब स्वप्न के नाटक में दीखने वाले वास्तविक सत्ता से विहीन कल्पित पात्र थे वा हैं ? क्या विपक्षी के माता पिता व वह स्वयं स्वप्न के पात्र थे वा हैं ? वेदान्ती पागलपन की बातें कहता है जब वह सत्य को असत्य व स्वप्नवत बताता है।

किसी भी बात की सत्यता को जांचने के लिए ही परमेश्वर ने मानव को पञ्च ज्ञानेन्द्रियां व बुद्धि दी है और जो बात इनसे जांच ली जावे वह सत्य मानी जाती है। पंच ज्ञानेन्द्रियों से पञ्च भौतिक जगत की प्रत्येक बात को बुद्धि पूर्वक मानव

मानता है और उसके अस्तित्व को प्रतीत करता है जगत का अस्तित्व स्वयं सिद्ध है, उसे झुठलाया नहीं जा सकता है । हां, वेदान्ती की वाणी व विचार धारा अवश्य मिथ्या है और वह मानने के योग्य नहीं है । वेदान्ती अपने हाथ पैर मुंह आदि को भी स्वप्नवत मिथ्या मानता है । चलता हुआ भी यह समझता है कि वह स्वप्न में चल रहा है, खाता व बोलता हुआ भी यह समझता है कि वह स्वप्न में खा व बोल रहा है, किन्तु यदि कोई उसकी खोपड़ी पर डन्डा मार दे या उसके सर पर आग रख दे तो उस का नशा उतर जाता है और वह इनको वास्तविक मानने लगता है, भूख प्यास लगने पर वह रोटी खाना, पानी पीना स्वप्न नहीं मानता है जहां पर उसका स्वार्थ सिद्ध होता है वहां वह उसे स्वप्नवत मिथ्या नहीं मानता है । पानी हाथमें रखवा कर चेले चेली मूंडना उसे स्वप्न नहीं लगता है । बड़े २ लैक्चर झाड़ना उसे स्वप्न की घटनायें नहीं लगती हैं । जहां उस का स्वार्थ सिद्ध होता है वहां उसका स्वप्नवाद समाप्त हो जाता है किन्तु दूसरों को बहकाने के लिए वह सभी बातों को स्वप्नवत् मिथ्या बताने लगता है ।

ब्रह्म शब्द का अर्थ भी महान है । महानता वा लघुता सापेक्ष होती है । यदि कोई दूसरी छोटी सत्ता नहीं है तो ब्रह्म की महानता किसकी अपेक्षा से प्रगट होगी । इसी प्रकार यदि कोई बड़ी सत्ता नहीं होगी तो दूसरी सत्ता की लघुता की सिद्धी भी नहीं हो सकेगी । ब्रह्म शब्द ही यह बताता है कि ईश्वर की अपेक्षा अन्य सत्तायें जीव व प्रकृति की विद्यमानता है और उनकी अपेक्षा महान होने से परमेश्वर की ब्रह्म संज्ञा है । अत: अद्वैतवाद का सिद्धान्त समाप्त हो जाता है इसी प्रकार ईश्वर शब्द का अर्थ भी श्रेष्ठ स्वामी होता है । जबकि स्वामित्व के लिए अन्य सत्तायें विद्यमान हैं तभी परमेश्वर स्वामी कहा जा सकता है । यदि अन्य सत्ता न होती तो उसे 'ईश्वर' कहा ही नहीं जा सकता था । परमेश्वर के नाम वाले सम्पूर्ण शब्द अद्वैतवाद का खंडन करते हैं ।

इसी प्रकार जगत व सृष्टि शब्द भी अद्वैतवाद का खण्डन करते

हैं। जगत (ज=उत्पन्न होना, गत=नष्ट होना। शब्द का अर्थ ही उत्पन्न होकर नष्ट होने वाला है। सृष्टि का अर्थ उत्पन्न होने वाली है। ब्रह्म न उत्पन्न होने वाला है और न नष्ट होने वाला है। वह तो अजर, अमर, नित्य, एक रस अपरिवर्तनीय अखण्ड सत्ता है। स्पष्ट है कि यह उत्पत्ति विनाश धर्मा सत्ता वाला जगत परमेश्वर से भिन्न स्थिति रखता है, जिसका परिवर्तन शील गुण ब्रह्म से प्रथक है। इस प्रकार द्वैतवाद सिद्ध है।

अद्वैतवादी तर्क प्रस्तुत करता है कि "दो या तीन वस्तु अनादि नित्य होने से ईश्वर अद्वितीय, सर्व शक्तिमान, सर्वव्यापक और अनन्त नहीं हो सकता, एक की शक्ति वा अस्तित्व दूसरे को सीमा बद्ध कर देगा। अर्थात् यदि ब्रह्म से सृष्टि को अलग माना जाय तब ब्रह्म के अनन्तत्व में दोष आने के अतिरिक्त सृष्टि द्वारा परमात्मा सीमाबद्ध भी हो जाता है। यदि उपादान कारण प्रकृति का अस्तित्व आदि काल में स्वीकार किया जाय तो ब्रह्म अद्वितीय और सृष्टि का कारण नहीं रहता। (भ्रा० नि० पृ० ७-८)

उत्तर–अद्वैतवादी की बुद्धि नुमायश में रखने योग्य है। वह यह भी नहीं समझ पाता है कि जीव एक देशीय सत्ता है, प्रकृति भी जड़ एक देशीय सत्ता है। ब्रह्म अनन्त विश्व में व्यापक महान अनन्त सत्ता है। जीव एक घास का पत्ता भी नहीं बना सकता है, ब्रह्म अनन्त ब्रह्माण्ड को अपनी सत्ता व सामर्थ से धारण कर रहा है। क्या उस ब्रह्म की कोई समता क्षुद्र जीव से की जा सकती है ? जीव इतना अल्पज्ञ है कि अपने शरीर के बाल की रचना का प्रकार भी नहीं जान पाता है जब कि ब्रह्म अनन्त विश्व की रचना स्थिति व प्रलय की व्यवस्था का संचालन ज्ञान पूर्वक क्रियाओं व नियमों के आधार पर कर रहा है। तो ब्रह्म सर्व शक्ति मान व अद्वितीय क्यों नहीं है ? ब्रह्म सर्व व्यापक तभी है जबकि उसके व्यापक होने के लिए प्रथक अस्तित्व वाला पदार्थ हो। व्यापक तभी होगा जब व्याप्य वस्तु स्वतंत्र सत्ता के साथ विद्यमान हो। और जब ब्रह्म की व्यापकता में सर्व शब्द जोड़कर

विपक्षी उसे सर्व व्यापक मानता है तो सिद्ध है कि व्याप्य पदार्थ विश्व में अनन्त हैं और सभी में ब्रह्म व्यापक है। तभी तो उसे सर्व व्यापक कहा जाता। यह सर्व व्यापक शब्द भी ब्रह्म का ऐसा विशेषण है जो अद्वैतवाद के सिद्धान्त का मिथ्यात्व प्रगट कर देता है।

क्योंकि विश्व अनन्त है और उसके प्रत्येक अंश व परमाणु में ज्ञान पूर्वक क्रिया हर समय होती रहती है जो कि ब्रह्म की व्यापक सत्ता को विश्व में प्रगट करती है क्रिया बताती है कि ब्रह्म कार्य रूप जगत के भीतर बाहर सर्वत्र व्यापक है। अतः किसी भी तर्क से उसे सीमा बद्ध सिद्ध नहीं किया जा सकता है। जैसे कि आकाश अनन्त भी है और विपक्षी के शरीर के भीतर बाहर सर्वत्र विद्यमान भी है तो शरीरान्तर्गत विद्यमान होने से आकाश के अनन्तत्व को ससीम नहीं किया जा सकता है।

ब्रह्म जगत का निमित्त कारण है। जड़ प्रकृति उपादान कारण है जिससे ब्रह्म जड़ जगत के पदार्थों की रचना करता है। अतः प्रकृति के अनादित्व के कारण ब्रह्म के जगत बनाने में निमित्त कारण होने में कोई बाधा नहीं आ सकती है।

वेदान्ती—प्रत्येक आत्मा परमात्मा बनेगा।

(आ० नि० पृ० २०)

उत्तर—एक देशीय सत्ता जीवात्मा कभी अनन्त नहीं बन सकता है। अनन्त अनन्त ही रहेगा वह एक देशीय नहीं बन सकता है और न एक देशीय अल्प जीव अनन्त विश्व में व्यापक परमात्मा बन सकता है। विपक्षी कदाचित स्वप्न देख रहा है और उसी में ऐसी निरर्थक बातें लिख बैठा है।

वेदान्ती—नाम रूप विशिष्ट जगत का ब्रह्म से भिन्न अस्तित्व नहीं है। अर्थात ब्रह्म से भिन्न स्वतन्त्र नहीं है अतः जगत सत्य नहीं है क्यों कि ब्रह्म से भिन्न सत्ता का मानना मिथ्या स्वप्नवत कल्पित है। जो सत्ता भास रही है वह ब्रह्म ही है।

(आ० नि० पृ० ३)

उत्तर—हम पूर्व सिद्ध कर चुके हैं कि जड़ जगत में चैतन्य ब्रह्म की सत्ता ज्ञान पूर्वक जगत की रचना के होते रहने से स्पष्ट रूप से सिद्ध है। जड़त्व धर्म ब्रह्म में नहीं है और कार्य रूप जगत में जड़त्व विद्यमान है अतः चैतन्य ब्रह्म तथा जड़ कार्य रूप जगत दो सत्तायें स्वतः सिद्ध हैं और अस्तित्व रखती हैं। ब्रह्म का निराकारत्व उसका नित्य गुण है जो कि अपरिवर्तनशील है, जब कि इन्द्रियगोचर भौतिक कार्य रूप जगत जो ज्ञानेन्द्रियों से जीवों को भासित होता है उसका ब्रह्म से पृथक अस्तित्व स्वतः सिद्ध है। इस प्रकार विपक्षी का यह कहना कि भासमान विश्व ब्रह्म ही है मिथ्या है। अभौतिक होने से ब्रह्म इन्द्रियों से भासित होने वाली (ग्रहण करने योग्य) सत्ता नहीं है। कार्य रूप में जब तक जगत के पदार्थ विद्यमान हैं तब वह सत्य हैं। और जब वे कार्य रूप से बदल कर कारणावस्था में आ जाते हैं तब उनकी कारणावस्था भी सत्य है। अतः जगत कार्य व कारण रूप दोनों अवस्थाओं में सत्य हैं, स्वप्नवत् मिथ्या किसी भी दशा में नहीं है। जो व्यवहार से सत्य हैं वह परमार्थ में भी सत्य है। सत्य सदैव सत्य है कभी किसी दशा में अस्तित्वहीन न होने से असत्य नहीं हो सकता है। मोमबत्ती जिन तत्वों के योग से बनती है उसका स्वरुप मोमबत्ती के रूप में भी सत्य है तथा जलजाने के बाद उन कारण रूप द्रव्यों का रूप परिवर्तन होने पर भी उन का अस्तित्व अन्य रूप में विद्यमान रहने से उस दशा में भी अस्तित्व सिद्ध है। इसी प्रकार कार्य रूप में जगत सत्य है और नष्ट हो जाने पर प्रलयावस्था में भी कारण रूप में (उसके उपादान कारण पदार्थ) विद्यमान रहने से वह रूप भी सय है मिथ्या नहीं है।

वेदान्ती—माया अविद्या को तो प्रकृति जानो, और परमात्मा को माया वाला जानो अर्थात् माया अविद्या परमात्मा की शक्ति है। परन्तु परमेश्वर से भिन्न उसकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। अर्थात् अपनी शक्ति सहित ब्रह्म अभिन्न निमित्तोपादान कारण है।

(भ्रा० नि० पृ० ५०–५१)

उत्तर–विपक्षी वाक् छल करता है। हम पीछे सिद्ध कर चुके हैं कि जगत का उपादान कारण जड़ प्रकृति अनादि स्वतन्त्र सत्ता रखती है। परमात्मा और उसकी शक्ति एक ही बात है किन्तु परमात्मा और जड प्रकृति को एक ही बताना नादानी है। जड़ प्रकृति चैतन्य परमात्मा नहीं है और न परमात्मा जड़ प्रकृति है। दोनों प्रथक २ सत्तायें रखते हैं। रोटी बनाने वाली आटा तथा रोटी तीनों एक ही नहीं है।

वेदान्ती–प्रकृति को एक भिन्न त्रिगुणात्मक स्वतन्त्र पदार्थ मान भी लिया जाय तथापि इस प्रश्न का उत्तर दिया ही नहीं जा सकता कि उसमें सृष्टि निर्माण करने के लिए प्रथम बुद्धि (महत्तत्व) अहंकार कैसे उत्पन्न हुआ ? (प्रा० नि०)

उत्तर–जब प्रलय अवस्था से सृष्टि रचना का क्रम प्रारम्भ होता है परमाणु रूप अवस्था से भी पूर्व की जो कारण सत, रज-तम की साम्यावस्था होती है उसमें परिवर्तन प्रारम्भ होने लगता है। उस परिणमन की जो प्रथमावस्था बनती है उसी का नाम महत्तत्व होता है। दूसरी अवस्था की संज्ञा अहंकार होती है। यह सब प्रकृति के क्रमशः परिणमत की अवस्थायें हैं। यहां आपने बुद्धि अर्थ गलत समझा है। आश्चर्य है कि आप स्वयं ब्रह्म बनने के दावेदार होते हुए जरा २ सी बातें भी नहीं समझ पाते हैं जबकि ब्रह्म सर्वज्ञता का गुण रखता है। इससे सिद्ध है कि आप झूठे ब्रह्म हैं।

वेदान्ती—एक अन्तः करण में एक ही समय एक साथ सर्वज्ञ अल्पज्ञ दो आत्मा नहीं रह सकते अर्थात एक चैतन्य ब्रह्म निराकार में स्वरूप से असंख्य चैतन्य निराकार जीव नहीं रह सकते तथा एक अन्तःकरण से दो आत्मा एक मनन करने योग्य और दूसरा मनन कर्ता नहीं हो सकता। (प्रा० नि० पृ० ७३)

उत्तर—मिट्टी वा पत्थर के एक ढेले में आकाश, वायु तथा अग्नि तीनों की विद्यमानता सिद्ध है, तीनों ही तत्व एक ही पदार्थ में एक ही समय में अपने २ गुणों के साथ विद्यमान रहते हैं। उसी

प्रकार मानव शरीर में जीवात्मा व्यापक है और परमात्मा भी उसी में व्यापक है दोनों ही अत: करण एवं समस्त शरीर में नित्य विद्यमान रहते हैं। मरणोपरान्त जीवात्मा शरीर से पृथक हो जाता है तथा परमात्मा की सत्ता उस शव में कार्य करती दिखाई देती है। शरीर के परमाणुओं में नियम पूर्वक विनाश वा विघटन की जो क्रिया होती रहती है परमेश्वर की सत्ता की विद्यमानता सूचित करती है। उसी प्रकार सूक्ष्म व्यापक जीवात्मा की विद्यमानता में परम सूक्ष्म सर्व व्यापक परमेश्वर की विद्यमानता को स्वीकार करने में आपको कोई बाधा नहीं होनी चाहिए।

वेदान्ती—अवच्छेदवाद में अन्त:करण के भीतर जो चैतन्य आ गया उसी को जीव माना है और अन्त:करण से बाहर जो चैतन्य उसी को ईश्वर माना है। (भ्रा० नि० पृ० ८१)

उत्तर—आप चाहे जो भी मान बैठें स्वतन्त्र हैं। पर आपकी मान्यता हास्यास्पद है। यदि शरीर के अन्दर बन्द हिस्सा परमात्मा का अंश जीव है तो शरीर के नष्ट हो जाने पर उसे ब्रह्म में मिलकर ब्रह्म बन जाना चाहिए तथा पुनर्जन्म नहीं होना चाहिए। किन्तु पुनर्जन्म होता है और अनेक बालक पूर्व जन्म का हाल ठीक २ बतलाते देखे जाते हैं। इससे सिद्ध है कि शरीर में बन्द जो जीवात्मा होता है वह परमात्मा से स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है। अपने कर्मों व संस्कारों के साथ एक शरीर को त्याग कर कर्म फल भोग ने के लिए अन्यान्य अनेक शरीरों में जाता रहता है। यदि विपक्षी की बात सत्य होती तो फुटवाल की गेंद की हवा जैसे निकलने पर बाहर व्यापक वायु मण्डल में मिलकर एकाकार हो जाती है और फिर दूसरी गेंद में वही वायु भरने में नहीं आती है वैसे ही एक शरीर त्यागने पर जीवात्मा का पुन: जन्म नहीं हो सकेगा। किन्तु आवागमन का चक्र जीवात्मा का महान परमेश्वर की व्यवस्था से चलता रहता है। अत: नवीन वेदान्तियों की कल्पना जीव ब्रह्म की एकता की मिथ्या है।

हम दृश्यमान जगत को प्रत्यक्ष में सत्य पाते हैं तो यह प्रश्न होता है कि विकारी प्रकृति को इस रूप में कौन लाया ? लेख बिना लेखक के नहीं लिखा जा सकता है, कार्य बिना कर्त्ता के नहीं होता है, व्यवस्था बिना व्यवस्थापक के नहीं होती है। जीवों के कर्म फलों को जान कर तदनुकूल कर्म फल व्यवस्था कोई अन्य ही कर सकता है, कर्म स्वयं किसी कर्ता को फल न्यायानुसार देने की क्षमता नहीं रखते हैं, संसार के अन्दर कर्मों की विषमता के कारण जीवों की दशा में विषमता देखी जाती है, सूर्य चन्द्र आकाश के तारे पृथ्वी आदि निराधार आकाश में निरन्तर गतिशील रहते हुए भी परस्पर में टकराते नहीं हैं, ऋतुओं का नियम पूर्वक आना, ग्रहण आदि का व्यवस्थानुसार लगना, यह सब यह सिद्ध करता है कि सत्यवान जगत् का सम्पूर्ण व्यवहार एवं संचालन किसी एक चैतन्य महान एवं सर्व व्यापाक सर्व शक्तिमान सत्ता के द्वारा हो रहा है जिसकी सत्ता सब से प्रथक है किन्तु सब पर अन्दर बाहर से प्रभावी है, और वही सत्ता परमेश्वर है। कारण जड़ प्रकृति स्वयं जगत के रूप में नहीं बदल सकती है। उसे ज्ञानवान बदलने वाला चाहिए। चैतन्य ब्रह्म भी स्वयं को जगत के रूप में नहीं बदल सकता है क्योंकि परिवर्तन वा परिणमन विकारी प्रकृति मैं ही सम्भव है। ब्रह्म तो निर्विकार सत्ता है, उसमें परिवर्तन वा भ्रम सम्भव नहीं हो सकता है। परिवर्तन धर्मा वस्तु नाशवान होती है। यदि ब्रह्म में परिवर्तन गुण होगा तो वह भी नाशवान हो जावेगा। साथ ही अनेक शंकाये उस पर पैदा हो जावेंगी। सर्वव्यापक ब्रह्म अकायम् है तो वह इस छोटे से शरीर में कैसे आ गया ? सर्व व्यापक का एक शरीर में बन्द हो जाना सम्भव नहीं हो सकता है।

विकारी जीव बार २ जन्म धारण करता फिरता है वह आवागमन के चक्र में फंसा हुआ दुःख सुख का भोक्ता है। ब्रह्म सुख दुःख भोग एवं जन्म मरण, बुढ़ापा आदि व्याधियों से रहित है। अतः ब्रह्म जीव नहीं हो सकता है। दोनो प्रथक २ सत्तायें हैं।

ब्रह्म सर्वज्ञ सत्ता है तो जीव अल्पज्ञ सत्ता है। दोनों की भिन्नता स्पष्ट है। भलेबुरे कर्मों का एवं उनके फल भोग का बन्धन जीव के साथ है, ब्रह्म कर्म एवं उनके फलों से निर्लेप होने से जीव से प्रथक स्वयं सिद्ध है। योग दर्शन ने भी ब्रह्मका लक्षण करते हुए 'क्लेश कर्म विपाका शायैपुरुष विशेषी ईश्वरः" सूत्र में क्लेश कर्म और उनके फलों से रहित ब्रह्म को माना है।

यदि ब्रह्म अवयवों (टुकड़ों) का समूह है वा उनके जोड़ से मिलकर बना है तो ब्रह्म के खण्ड होकर जीवात्मा बनने की दलील कुछ अर्थवान होगी किन्तु ब्रह्म संयोग जन्य मानने से (बना हुआ होने से) सादि हो जावेगा और सादि होगा तो कभी न कभी सान्त (मरण धर्मा) भी हो जावेगा। तथा ब्रह्मको बनाने बाला भी कोई अन्य मानना पड़ेगा। तब वह ब्रह्म ही नहीं रहेगा। परन्तु ब्रह्म निरवयव अनादि सत्ता है। अतः न वह खण्डों से बना है और न उसके कल्पित अंश रूप को जीव की सत्ता मानी जा सकती है। इसलिए जीव ब्रह्म नहीं है और न ब्रह्म जीव बन गया है यही माना जा सकता है।

वेदान्ती हम ब्रह्म हैं क्यों कि हम अपने को ब्रह्म मानते हैं।

उत्तर-आप असत्य भाषण करते हैं। ब्रह्म ने सूर्य चन्द्र, पृथ्वी नक्षत्र आदि अनन्त विश्व की रचना की है। आपसे इमली का एक पत्ता भी नहीं बन सकता है शरीर से उखड़े एक बाजू को भी आप उसी स्थान पर पुनः नहीं जोड़ सकते हैं। इससे सिद्ध है कि आप ब्रह्म नहीं हैं। यदि हैं तो गज भर की पृथ्वी वायु मण्डल में बनाकर दिखा देवें। अन्यथा आप झूठे ब्रह्म हैं।

वेदान्ती–जगत मिथ्या है, ब्रह्म सत्य है।

उत्तर–जगत शब्द के अन्तर्गत आप क्या लेते हैं तथा मिथ्या का क्या अर्थ है?

वेदान्ती–परमाणु से लेकर सम्पूर्ण कार्य जगत, सूर्य चन्द्र पृथ्वी दृश्यमान भौतिक पदार्थ सभी जगत के अन्तर्गत आते हैं। मिथ्या का अर्थ यह है कि यह सब वास्तव में झूठे हैं इनका कोई अस्तित्व ही नहीं है।

उत्तर—तुम्हारा सम्प्रदाय, ग्रन्थ, गुरू, तुम व तुम्हारी वाणी आदि भी क्या जगत के अन्तर्गत आते हैं ?

वेदान्ती—हां, सभी कुछ जगत के अन्दर सम्मिलित है।

उत्तर-तब सिद्ध हुआ कि तुम्हारा सम्प्रदाय, पुस्तकें और जो कुछ तुम कहते हो सभी झूंठा है। और जब तुम्हारे ही कथनानुसार तुम्हारी बात झूंठी है तो इसका अर्थ यह हुआ कि जगत और ब्रह्म दोनों को सत्य मानना चाहिए।

वेदान्ती—वेदान्त सिद्धान्त में जीव और ब्रह्म में अंश अंशी सम्बन्ध हैं। वास्तव में दोनों एक हैं। (भ्रा० नि० पृ० २३)

उत्तर—यह मानना आपका मिथ्या है। यदि जीव को ब्रह्म का अंश मानोगे तो बताना होगा कि ब्रह्म के खण्ड कर के जीव को किसने और क्यों बनाया ? अथवा क्या ब्रह्म ने अपने खण्ड २ स्वयं कर डाले और छोटे २ खण्ड जीव कहलाये। यदि हां, तो ब्रह्म ने ऐसा क्यों किया ? क्या ब्रह्म को कोई उन्माद पैदा हो गया था जो अपने अङ्ग काटता रहा ? फिर जब ब्रह्म के खण्ड-खण्ड हो गये तो ब्रह्म खण्डित हो जाने से पूर्ण नहीं रहा। जब ब्रह्म के एक अंश में टूटने का विकार आ गया तो सम्पूर्ण के भी टुकड़े २ होकर उसका विनाश (प्रलय) हो जावेगी, यह भी आप क्यों नहीं मानते ? एक वस्तु का खण्डित होंना उसमें दुर्बलता व विकृति की सूचक होती है तो क्या तुम्हारा ब्रह्म विकार भी है ?

अनादि, पूर्ण, निर्विकार, सर्व व्यापक अनन्त ब्रह्म को भी इन वेदान्तियों ने विकारी एवं नाशवान बता दिया है। इससे प्रगट है कि ये ब्रह्म को नहीं समझते हैं। प्रत्येक अंश (टुकड़ा) कभी पहिले अंश बनने से पूर्व अपनी अंशी (पूर्ण) में सम्मिलित होकर एकाकार होता है। संयोग वियोग उसी में हो सकता है जो अनेक पदार्थों वा अंशों के समूह से बना हो। जो एक होता है, जिसमें परमाणुओं का संयोग नहीं होता है उसके खण्ड वा अंश नहीं बन सकते हैं। जो संयोग जन्य होता है, वह किसी काल विशेष में संयोग होने से पैदा होता है और

संयुक्त पदार्थों वा अंशों के प्रथक हो जाने पर उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। अत: संयोग जन्य पदार्थ वा सत्ता अनादि अनन्त न होकर सादि और सान्त होती है। परमात्मा अनादि अनन्त चैतन्य निर्विकार सत्ता इसीलिए है कि वह संयोग जन्य सत्ता नहीं है। जीवात्मा और परमात्मा इसीलिए अनादि अनन्त सत्तायें हैं। इस दृष्टि से जीवात्मा परमेश्वर का अंश नहीं है।

दूसरी बात यह भी है कि अंश में अंशी के समस्त गुण रहते हैं जैसे स्वर्ण के खण्ड में भी स्वर्ण के गुण रहते हैं। किन्तु जीवात्मा, अल्पज्ञ, एक देशीय, दु:ख सुख का भोक्ता, कर्म अकर्म का कर्ता जन्म मरण के चक्र में घूमने वाला, आनन्द रहित होने से आनन्द की खोज में भटकने वाला आदि गुणों वाला होने से ब्रह्म के गुण आनन्द, सर्वज्ञता, सर्व व्यापकत्व, निर्भय, नित्य पवित्र, क्लेश कर्म और उनके विकार वा परिणामों से रहित जो सर्व साक्षी सर्वाधार आदि से रहित होने से न तो ब्रह्म होता है और न ब्रह्म के साथ उसका अंश अंशी सम्बन्ध सिद्ध किया जा सकता है। अत: नवीन वेदान्तियों का जीव को ब्रह्म का अंश बताना मिथ्या हैं।

वेदान्ती—प्रलय में सृष्टि परब्रह्म में समा जाती है। तब उस सृष्टि के अन्त:करण विशिष्ट चेतन जीवात्मायें (सूक्ष्म शरीर) अपनी शुभा-शुभ कर्मों की वासनायें लेकर अपने आदि कारण में लय रहते हैं। उस समय उनका ज्ञान भी परब्रह्म में ही रहता है। क्योंकि उनके और परब्रह्म के स्वरूप में कोई भेद नहीं रहता। उन्हीं के कल्याणार्थ वर्तमान कला में सृष्टि होती है और वह क्रम प्रवाह से जारी रहता है। (भ्रा० नि० पृ० २८)

उत्तर-आपकी बात भ्रान्ति पूर्ण है। ब्रह्म के सर्व व्यापक होने से सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म में समाया हुआ प्रत्येक दशा में रहता है, अब भी है और प्रलय में भी रहता है। अत: यह कहना कि प्रलय में ही ब्रह्म में सृष्टि समा जाती है, बेतुकी बात है। प्रलय में समस्त जीवात्मा अपने कर्मों के संस्कारों से युक्त शून्य में ब्रह्म के साथ रहते हैं, यह आपको स्वीकार है, तथा यह भी स्वीकार है

कि फिर समय आने पर प्रलय की अवधि के अन्त होने पर उन्हीं जीवों के लिए परमात्मा पुनः सृष्टि की रचना करके उन जीवात्माओं को उनके कर्मानुकूल शरीरों से संयुक्त करके कर्म करने का अवसर प्रदान करता है और यही अनादि क्रम भी है। तो इससे आपने आर्य समाज को मान्य त्रैतवाद स्वीकार कर लिया। आपने तीनों सत्तायें स्वतन्त्र स्वीकार कर लीं। एक तो ब्रह्म माना, दूसरी सत्ता जीवों की मानली, तीसरी सत्ता जगत के उपादान कारण की मानली जिसे प्रकृति कहते हैं। जगत को भी आपने प्रवाह से अनादि मान लिया। आपने यह स्वीकार कर लिया कि जीवात्मा घड़े के टूटने पर जैसे घड़े का आकाश विशाल आकाश में मिलकर अपना अस्तित्व समाप्त कर देता है वैसे प्राणी के मरने पर जीवात्मा परमात्मा में मिल कर एकीभूत होकर अपनी सत्ता समाप्त नहीं कर देता है किन्तु प्रत्येक सृष्टि एवं प्रलय काल में भी जीवात्माओं का परमात्मा के साथ किन्तु उस की सत्ता से प्रथक स्वतन्त्र सत्ता के रूप में सदैव अस्तित्व बना रहता है और इस प्रकार जीवात्मा भी परमात्मा की तरह स्वतन्त्र अनादि सत्ता रखते हैं। हमें प्रसन्नता है कि आपने वैदिक सिद्धान्त की सत्यता को स्वीकार करके नवीन वेदान्त जीव ब्रह्म की एकता की निःसारता स्वीकार करली है।

वेदान्ती–प्रकृति ईश्वर के आधीन है और वह स्वयं अपने को धारण नहीं करती। (भ्रा० नि० पृ० २६)

उत्तर—यह आपने ठीक कहा है। इसमें आपने दोनों को मान लिया एक प्रकृति है, दूसरा जिसके वह आधीन रहती है। वह परमात्मा है। दोनों अनादि सत्तायें है, तीसरा जीवात्मा है। तीनों को अनादि मानने पर वैदिक त्रैतवाद आपके हीं लेख से सिद्ध हो जाता है।

वेदान्ती—व्यवहार में जगत को कौन मिथ्या कहता है। परमार्थ में अवश्य मिथ्या है।

मायान्तु प्रकृतिम् विद्यान्मायिनन्तु महेश्वरम्। तस्यावयव भूतैस्तु व्याप्तं सर्वं मिदं जगत्। श्वेत० ४।१०। माया को प्रकृति

जानो और परमात्मा को माया वाला जानो । अर्थात् माया (प्रकृति) परमात्मा की शक्ति है, और उसके एक देशस्थ महाभूत से यह सब व्याप्त है ।

(भ्रा० नि० पृ० ३५)

उत्तर—वेदान्ती जिसे माया बताते हैं, उपनिषद उस मायाको जगत का उपादान कारण भौतिक जड़ प्रकृति (सत्व रज तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः । सांख्य १।६१ के अनुसार) प्रकृति बताती है व प्रकृति का स्वामी परमात्मा को मानती है। प्रकृति परमात्मा की शक्ति ठीक इसी प्रकार है जिस प्रकार व्योपारी की शक्ति पैसा है, कुम्भकार की शक्ति मिट्टी व चाक है, सैनिक की शक्ति उसके शस्त्रास्त्र होते है । उसी प्रकार परमात्मा की शक्ति विश्व की रचना करने में उसके आधीन प्रकृति रूपी जगत का उपादान कारण है। इससे भी अद्वैतवाद का स्वतः खण्डन हो जाता है। जो व्यवहार में सत्य है वह परमार्थ में भी सत्य है और जो परमार्थ में सत्य है वह व्यवहार में भी सत्य ही होगा । आपका तर्क मुक्ति प्रमाण होने से मिथ्या है ।

वेदान्ती—ब्रह्म से भिन्न किसी पदार्थ की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है, इसलिए भिन्नता की प्रतीति मिथ्या है । (भ्रा० नि० पृ० ३७)

उत्तर—आप स्वयं ऊपर ब्रह्म, जीवात्मा तथा परमात्मा की नित्य शक्ति के रूप में प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार कर चुके हैं तब उसके विपरीत यहां लिखना आपका व्यर्थ है ।

वेदान्ती—व्यवहार दशा से त्रैतवाद मान्य है। वही अन्तः करण विशिष्ठ चेतन आत्मा को ब्रह्म का ज्ञान होने पर ये सब झूठ प्रतीत होने लगता है । (भ्रा० नि० पृ० ४५)

उत्तर—वस्तुतः जब त्रैतवाद स्वीकार की है तो फिर अद्वैतवाद की बात करना उसकी भूल है। किसी को कोई बात मस्तिष्क की विकृति से वा भ्रान्ति वश किसी दशा में मिथ्या लगने लगे तो उससे विश्व की सत्ता की विद्यमानता मिथ्या नहीं हो जावेगी । यह तो किसी व्यक्ति विशेष का अपना दोष है कि वह सत्य को असत्य समझने लगे।

वेदान्ती—सः योहवै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्या

ब्रह्म वित्कुले भवति। तरति शोंक तरित पापमान गुहा ग्रन्थिम्यो विमुक्तो अमृतो भवति ।।मुं० ३।२।६ (आ० नि० पृ० ८२)

अर्थ–निश्चय करके जो कोई उस परमात्मा ब्रह्म को अहं ब्रह्मास्मि भाव से जानता है वह ब्रह्म ही होता है और शोक अर्थात् मन के संताप से छूट जाता है। धर्म अधर्म दोनों से छूट जाता है और हृदय की संशय रूप ग्रन्थियों से छूटा हुआ मरण धर्म रहित होता है, तथा उस विद्वान के कुल में ब्रह्म का न जानने वाला कोई नहीं होता है।

यथोदकं शुद्धे शुद्धे मासिक्त ताद्धगेव भवति। एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ।।कठो० ४ १५।।

अर्थ—हे गौतम वंशीय नचिकेता ! जैसे शुद्ध जल में अच्छे प्रकार सींचा हुआ शुद्ध निर्मल जल शुद्ध एकात्मक जल ही हो जाता है इसी प्रकार एक अद्वैत रूप अभेद को जानते हुए ब्रह्म ज्ञानी पुरुष की आत्मा एक अद्वैत भाव को प्राप्त हो जाती है। (आ० नि० पृ० ८२-८२)

उत्तर–आपने अर्थ गलत किया है तथा अर्थ में स्वार्थवश प्रक्षेप किया है। आपने 'अहं ब्रह्मास्मि भावसे जानता है' यह वाक्य अपनी ओर से मिथ्या मिलाया है जो अनुचित किया है। उपनिषद के मंत्र का अर्थ सीधा सा पूर्वा पर प्रसंगानुसार यह है कि 'वह जो व्यक्ति परब्रह्म को जानता है, ब्रह्म में तन्मय रहने से ब्रह्म के सादृश्य को प्राप्त कर लेता है (अर्थात् उसमें भी शान्ति दया निर्भयता, परोपकार पवित्रता आदि गुण ब्रह्म की ही भांति उत्पन्न हो जाते हैं।) उस तपस्वी के कुल में ब्रह्म को न जानने वाला कोई उत्पन्न नहीं होता है, वह शोक को तर जाता है, वह पाप को पार कर लेता है और वह ब्रह्म वेत्ता योगी हृदय की गांठों के बन्धन से छूट कर मुक्त हो जाता है।

हे गौतम वंशीय नचिकेता ! जैसे शुद्ध जल शुद्ध जल में डाला हुआ शुद्ध ही हो जाता है ऐसे ही ब्रह्म वेत्ता ज्ञानी मनुष्य की आत्मा पवित्र परमेश्वर से मिलकर शुद्ध पवित्र और निर्मल हो जाती है।

उपनिषदों के दोनों ही मंत्रों में अद्वैत वाद की गन्ध भी नही है, यह सभी उपनिषदों को पढ़ व समझकर जाना जा सकता है।

वेदान्ती—यदि प्रकृति और पुरुष भिन्न भिन्न है तो सयोग का सम्बन्ध हुआ, फिर इन दोनों का संयोजक कौन है ? जड़ और चेतन का भिन्न २ मानने से कुछ व्यवधान रहेगा अर्थात् दो भिन्न २ सत्ता मानने से सूक्ष्म से सूक्ष्म अन्तर अवश्य होगा और अन्तर होने पर ब्रह्म सर्वव्यापक अखंड अनन्त सर्व रूप न रहेगा। (भ्रा० नि० पृ० ९९)

उत्तर—जड़ प्रकृति और चैतन्य सर्व व्यापक ब्रह्म का व्यापक व्याप्य नित्य सम्बन्ध है, संयोग सम्बन्ध नहीं। जैसे आकाश समस्त पदार्थों में व्यापक है वैसे ही सर्व व्यापक ब्रह्म नित्य प्रकृति एवं कार्य रूप जगत में रहता है। अतः आक्षेप को कोई स्थान नहीं है।

वेदान्ती—सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानितिशान्त उपासीत। छा० ३।१४।१। सारा जगत वास्तव में ब्रह्म ही है क्यों कि ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है, उसी में स्थित है, और ब्रह्म ही में लय होता है, शान्त होकर ऐसी उपासना करे ।। ब्रह्म से भिन्न सत्ता का भासना मिथ्या स्वप्नवत् कल्पित है क्योंकि ब्रह्म से भिन्न कोई सत सत्ता नहीं है। जो सत्ता भास रही है वह ब्रह्म ही है, भिन्न नहीं।

(भ्रा० नि० पृ० १००।१०१)

उत्तर—यहां भी आपने उपनिषद का अर्थ नहीं समझा है। उपनिषद में ब्रह्म के स्वरूप एवं उसकी उपासना का प्रकरण चल रहा है। ऋषि बताते हैं कि यह सम्पूर्ण विश्व तत-ज-ल=(तत्) उस परमेश्वर से (ज) उत्पन्न होता है तथा (ल) प्रलय काल में वही उसको लय कर देता है। जगत की उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय परमात्मा ही के द्वारा होती है। साधक योगी को ध्यान के समय जो सूर्यवत् महान प्रकाश दीखता है तथा आनन्द रूप से अनुभूति होती है वह सब ब्रह्म ही है। अतः साधक शान्त चित्त होकर ब्रह्म का ध्यान करे इत्यादि।

उसमें एक साधक जीवात्मा तथा दूसरा जिसका ध्यान किया जाता है व जिससे जगत की उत्पत्ति स्थिति प्रलय होती है वह परमेश्वर तथा तीसरा जगत् इन तीनों के सत्य अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। अतः स्पष्ट रूप से इसमें त्रैतवाद का प्रतिपादन एवं आपके मिथ्या अद्वैत वाद का खण्डन विद्यमान है। जगत को स्वप्नवत् बताना भी पाखण्ड है, जब कि आप जीवात्मा तथा आपका शरीर जिसके माध्यम से आप बोल रहे है दो की सत्ता स्पष्ट होने से द्वैत आप में भी घुसा हुआ है। तब अद्वैत अद्वैत चिल्लाना आपका दुराग्रह नहीं तो क्या है सम्पूर्ण विश्व सर्व व्यापक ब्रह्म में ही प्रगट होता है, उसी में स्थित रहता है और उसी में प्रलय होती है। इससे जगत् ब्रह्म नहीं हो जाता है। जैसे आप मकान में पैदा हुए, मकान में ही रहे, और मकान में ही मर गए तो आप खुद मकान नहीं हो जाते। रहने वाला और जिसमें रहा जाता है दोनों प्रथक होते हैं। मछली अथवा काई जल में पैदा होती है, उसी में रहती है और उसी में नष्ट हो जाती है तो जल और मछली वा काई एक नहीं हो जाती है। दोनों की सत्ता प्रथक २ रहती है। ऐसे ही व्याप्य और व्यापक ब्रह्म व जगत की सत्ता को समझ लेवें।

वेदान्ती — जीवात्मा आनन्द स्वरूप है। (आ० नि० पृ० ११३)

उत्तर — यदि जीवात्मा आनन्द स्वरूप होता तो दुःखी क्यों रहता और क्यों आनन्द की खोज में जड़ प्रकृति व चैतन्य परमेश्वर के लिए मारा २ फिरता? उसके पास आनन्द गुण नहीं है इसी लिए वह आनन्द की खोज में फिरता है। आनन्द गुण केवल परमेश्वर में हैं। उसे ही सच्चिदानन्द कहते हैं, वह जीव को परमात्मा से ही प्राप्त हो सकता है। अतः आपका यह कथन सर्वथा मिथ्या है कि जीवात्मा आनन्द स्वरूप है इसे आप किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं कर सकते हैं।

वेदान्ती-'अहम ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूं यह इस का सीधा सा अर्थ है।

उत्तर-ब्रह्म शब्द का अर्थ कोष कार ने, महान व बड़ा भी किया

है। कोई यदि अपनी प्रशंसा में अपने को बड़ा या महान व्यक्ति बतावे तो वह अपने को अहम् ब्रह्मास्मि अर्थात् में बड़ा वा महान हूं यह कह सकता है। किन्तु इससे वह परमात्मा नहीं बन सकेगा क्यों कि परमात्मा के गुण, सर्वज्ञ, सर्व व्यापकत्व, सर्वाधिभूत्य, सर्व शक्तिमान आदि मनुष्य में नहीं होते हैं। वह क्लेश व उनके फलों का भोक्ता होता है, जीव परमात्मा जैसे कार्य करने में समर्थ नहीं होता है।

वेदान्ती—परमेश्वर केवल निमित्त कारण नहीं हो सकता क्यों कि वह प्रत्येक वस्तु में सर्व अधिष्ठान है। केवल निमित्त वह है जो जिस वस्तु को उत्पन्न करे परन्तु स्वयं उस वस्तु में अनुस्थूल न हो। (अ० सि० पृ० ३२)

उत्तर–निर्माण या रचना दो प्रकार से होती है। मनुष्य वा प्राणी जगत मकान, रेल आदि पदार्थ बाहर से क्रिया करके बनाते हैं। उनमें कर्ता कार्य से प्रथक होकर कार्य करता है। वृक्ष, जीवों के शरीर पृथ्वी आदि के अन्दर, एवं विश्व के कण-कण में अन्दर से रचना व निर्माता होता प्रत्यक्ष दीखता है, वह क्रिया रचना भी भीतर से होती है जो यह प्रगट करती है कि उस क्रिया वा रचना का कर्ता अन्दर व्यापक होकर नियम पूर्वक, बुद्धि पूर्वक रचना कर रहा है। वह रचना परमात्मा की होती है। सर्वत्र परमात्मा की रचना अन्दर से व मनुष्यादि की रचना कार्य बाहर से ही होता है। अतः आपका यह तर्क कि कर्ता कार्य के अन्दर व्यापक नहीं होता है आपकी अज्ञानता का द्योतक है।

वेदान्ती—एक परमात्मा असख्य जीवों को उनके कर्म फल कैसे दे सकता है?

उत्तर—मनुष्यों के कर्मों के संस्कार उनके अन्तः करणों में रहते है और उनके अनुसार उनके कर्म फलों की व्यवस्था परमात्मा अपने सर्वज्ञत्व एवं सर्व व्यापकत्व से करता है। आपके अद्वैतवाद से इस प्रश्न का कोई सम्बन्ध नहीं है। क्या आप बता सकते हैं कि आपके मत में जीवों की कर्म फल व्यवस्था कौन व कैसे करता है।

वेदान्ती—'अयमात्मा ब्रह्म' (माण्डूक कोपनिषद ।।२।।) यह आत्मा ही ब्रह्म है ।

उत्तर—उपनिषद के इस प्रकरण में परमात्मा के ओ३म् नाम का वर्णन चल रहा है । वहां लिखा है कि जिस ओ३म् ब्रह्म का यह वर्णन है यह वही आत्मा ब्रह्म है जो चतुष्पाद है । इसमें जीवात्मा वा मनुष्यों को ब्रह्म नहीं बताया गया है । उपनिषद पढ़कर पूर्वा प्रसंग देखकर वाक्य की संगति लगानी चाहिए, न कि मध्य में से एक टुकड़ा वाक्य का लेकर अर्थों की तोड़ मरोड़ करनी चाहिए ।

वेदान्ती—गायत्री मंत्र इस बात को बतलाता है कि ब्रह्म सर्वं व्यापी है और मैं आत्मा व ब्रह्म हूं, इस न्याय से जीवात्मा और परमात्मा एक ही है, तथा रस्सी और सांपके न्याय से जड़ पदार्थ ब्रह्म के ही रूप हैं । आनन्द स्वरूप ओंकार से वाच्य जो ब्रह्म है, वह मैं हूं।
(अ० सि० पृ० ६४)

उत्तर-आपको धोखा देही नहीं करनी चाहिए । गायत्री मंत्र का भी अर्थ जब आप नहीं समझ सकते तो आपकी विद्या का भी पता चल जाता है । गायत्री मंत्र तो स्पष्ट तथा त्रैतवाद का पोषक है । सवितः पद का अर्थ है जगत को उत्पन्न करने वाला, (तत् तथा यो) पद जगत् कर्ता परमेश्वर को सम्बोधन करते हैं । (नः) पद सन्मार्ग दर्शन की प्रार्थना करने वाली तीसरी सत्ता जीवात्मा के लिए है जो परमेश्वर से बुद्धि की याचना करता है । इस प्रकार परमात्मा और जीवात्मा (प्रार्थी और प्रार्थित) तथा परमेश्वर से उत्पन्न जगत इन तीन सत्ताओं की स्थिति गायत्री में स्पष्ट होने से अद्वैत का खुला खण्डन इनमें है । आपका जाल रचना यहां भी व्यर्थ गया ।

रज्जू और सर्प दोनों का ही अस्तित्व होता है । अन्धकार में स्पष्ट न दीखने से द्रष्टा जीव को भ्रम वश रज्जू देख कर सर्प की भ्रान्ति हो जाती है । वहां भी द्रष्टा जीवात्मा और उससे भिन्न अस्तित्व रज्जू व सर्प को विद्यमान होने से द्वैत स्पष्ट है । अद्वैत का यहां भी खंडन

ही जाता है। अल्पज्ञ, एक देशीय, चिन्ताओं, दुःखों व रोगों में ग्रसित, शरीर के बन्धन में परमेश्वर की व्यवस्था में कसा हुआ क्षुद्र मनुष्य जो ५ फीट के पार्थिव शरीर में बंधा पड़ा है अपने को सर्व व्यापक जगदाधार ब्रह्म मानने लगे तो उसे किसी पागल खाने में भेज देना चाहिए। जेल की काल कोठरी में प्रशासन की व्यवस्था से दण्ड भोगने को बन्द किया हुआ पापी मनुष्य यदि अपने को वहाँ राजा कहने लगे तो उससे बड़ा उन्माद ग्रस्त और कौन होगा। इन वेदान्तियों की भी ऐसी ही दयनीय दशा है। अपने को ब्रह्म कहने में इनको भी लज्जा संकोच नहीं होती जब किए परमात्मा द्वारा कैदी बनाकर कर्म फल भोगने को शरीर रूपी जेल खानों में बन्द कर रखे गये हैं।

वेदान्ती—मूर्ति पूजा में कोई दोष नहीं।

उत्तर—मूर्ति या किसी भी सत्ता की पूजा तभी सम्भव होती है जब वह पूजा करने वाले से प्रथक सत्ता रखती हो। जब वेदान्ती स्वयं ब्रह्म बनता है तो उसका मूर्ति पूजा की बात करना यह सिद्ध करता है कि मूर्ति वा परमात्मा उससे बड़ी व प्रथक सत्ता रखती है। इससे भी वेदान्ती स्वयं अपने अद्वैत वाद का खण्डन करता है।

वेदान्ती—ईश्वर स्वयं आपका प्रति रूप है। ईश्वर ने मनुष्यों को अपने अनरूप बनाया यह वाक्य मिथ्या है, सत्य यह है कि मनुष्य ने ईश्वर को अपने प्रति रूप बनाया, सारे विश्व में हम ईश्वर को प्रति रूप बना रहे हैं, अतः हम ही ईश्वर को बनाते हैं। इस लिए परम ईश्वर, ईश्वरों का ईश्वर मैं ही हूं। मैं से इतर अन्य कोई उपास्य देव नहीं है अर्थात् परम पुरुष पुरुषोत्तम परमात्मा मैं ही हूं।

(अ० सि० पृ० १४१)

उत्तर—परमात्मा ने सम्पूर्ण विश्व बनाया है। जब आप परमात्मा हैं तो नीम का एक पत्ता ही बना कर दिखा देवें। अनार का एक फल अपने हाथ से बना देवें गज भर की एक पृथ्वी निराधार आकाश में बिना इस पृथ्वी की मिट्टी व सामग्री लिए बना देवें। अपने बुढ़ापे को जवानी में बदल लेवें, सर के पीछे

अपने शरीर में एक आँख और बना लेवें। हम आप की आंख फोड़ दें तो आप दूसरी आंख बना लेवे, मुर्दा मक्खी को जिन्दा कर देवें। आपसे कुछ भी न हो सकेगा। क्यों कि विश्व रचयिता परमात्मा के नियमों के विपरीत कुछ भी कर सकना किसी भी जीव का सामर्थ्य नहीं है आप जैसे झूठे लोग चाहे अपने को कुछ भी कहते रहें किन्तु रहेंगे जीव ही। शेखी मारना ही वेदान्तियों का काम रह गया है। परमात्मा का जो कार्य क्षेत्र है उसमें जीव का कोई दखल वा प्रवेश नहीं हो सकता है। यदि खुदाई का दम भरने वाले आप परमेश्वर के कार्य जैसा कोई भीं काम करके दिखा सके तो आप को नगद पुरस्कार मिलेगा। अन्यथा आपकी बातें उन्मत के प्रलय जैसी हैं।

वेदान्ती—वेदान्त दर्शन भी अद्वैतवाद का समर्थन करता है।

उत्तर—आप की बात मिथ्या है। वेदान्त दर्शन का प्रथम सूत्र 'अथा तो ब्रह्म जिज्ञासा' यह वताता है कि ब्रह्म की सत्ता और ब्रह्म की जिज्ञासा करने वाला, यह दोनों ही प्रथक २ हैं। अतः अद्वैत का खण्डन प्रथम सूत्र से ही हो जाता है।

वेदान्ती—अथयोऽन्यां देवता मुपासतेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मी तिन स वेद यथा पशुरेवं स देवानाम्। यथा हवै वहवः पशवो मनुष्यं भुञ्ज्युः ॥ बृहदा० १।४।१०॥

अर्थ-अब जो अन्य देवता की उपासना करता है, यह समझता है, कि वह और है और मैं और हूं, वह नहीं जानता है, वह देवताओं के पशुओं की नाई है। ब्रह्म वेत्ता अपने को ब्रह्मास्थ समझते हैं।

उत्तर-यहां भी आपने अर्थ का अनर्थ किया है। यहां पर परमेश्वर का वर्णन चल रहा है। उपनिषत्कार ऋषि कहते हैं कि जो मनुष्य उस परमेश्वर (ब्रह्म) के स्थान पर अन्य देवी देवताओं की उपासना करता है, वह ब्रह्म को नहीं जानता है। वह देवताओं के पशुओं के समान है। ब्रह्म को एक देशीय सत्ता न समझकर सर्व व्यापक तथा अपने में भी व्यापक जान कर प्रत्येक जीव को उसी की उपासना करनी चाहिए, न कि घमण्ड के मारे अपने को ही ब्रह्म समझने लगे।

सारे वृक्ष को छोड़ देता है तो सारा वृक्ष सूख जाता है। सोम्य ! सोम्य निश्चय ऐसे ही मनुष्य शरीर को जानो।

जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियत इति स य एषोऽणिमैतदात्म्य मिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एवं मां भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति हो वाच।३।।

निश्चय से यह शरीर आत्मा रहित ही मरता है, जीवात्मा नहीं मरता है, मरण भाव आत्मा में नहीं है। वह सदा अमर सत्ता है। वह जो यह अविनाशी आत्मा है, परम सूक्ष्म है। यह आत्मात्भाव है। यह सर्व वह सत्य है, परम सत्य है। हे श्वेतकेतु ! वह अमर अविनाशी आत्मा तू है। उसने कहा-और भी मुझको भगवन् उपदेश दें। अरुणि ने कहा-सोम्य ! तथास्तु।

।।छान्दोग्योपनिषद् प्रपाठक ६ खण्ड ११।।

उपनिषद के इस स्थल में जीवात्मा के लिए "तत्तत्वम् असि" पद आया है। यहां परमात्मा का कोई उल्लेख नहीं है। अतः इस उपनिषद वाक्य में 'वह ब्रह्म तू है।" अर्थ निकालना प्रकरण विरुद्ध होने से वेदान्तियों का पाखण्ड है।

वेदान्ती-"अयमात्मा ब्रह्म" कह कर वृहदारण्यक उपनिषद ४।४।५। में जीवात्मा को ब्रह्म बताया है।

उत्तर-उपनिषद में जीवात्मा का ही वर्णन चल रहा है। वहां लिखा है—

सवा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञान मयो मनो मयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमयः पृथिवीमय आपोमयो वायु मय अकाश मय तेजो मयोऽतेजोमयः काम मयोऽकाममयः क्रोधमयोऽक्रोध मयो धर्ममयोऽधर्ममयः सर्व मयः।५।।

अर्थात् - यह जीवात्मा महान है, यह विज्ञान मय है, मनोमय है, प्राण मय चक्षु मय श्रोत्र मय पृथ्वी मय जल मय, वायु मय आकाश मय, तेजो मय, अतेजमय, काम मय अकाम मय, क्रोध मय, अक्रोधमय, धर्म अधर्म मय, सर्व मय है।

यह सब लक्षण वा गुण जीवात्मा के हैं और उसी का यहां वर्णन चल रहा है। किन्तु इसमें यह जीवात्मा ही ब्रह्म है, ऐसी कोई भी बात नहीं कही गई है।

वेदान्ती-ईश्वर मुक्त जीव अनादि से है ही किन्तु उसका ईश्वरत्व सदा नहीं रहेगा, इसलिए वह अनादि सान्त होगा। जीव अनादि तो है ही वह एक दिन ईश्वर भी होगा। ब्रह्म और ईश्वर का व्याप्य व्यापकता का सम्बन्ध पिता पुत्र का सम्बन्ध सब अनादि हैं।

(अ० सि० पृ० २९७)

उत्तर— ऐसा लगता है आप ने कुछ भांग पी रखी है जिससे आप की बातें अनर्गल प्रलापवत होती हैं। ब्रह्म और ईश्वर तो एक ही सत्ता के नाम हैं आप उन्हें दो कैसे बताते हैं। मुक्त जीव ही ईश्वर कहाते हैं यह तो नास्तिक जैनियों की मान्यता है। जो कि जगत तथा जीवों को नित्य सत्य मानते हैं। केवल सर्व व्यापक जगत्कर्ता परमात्मा को नहीं मानते हैं। पर आपका सम्प्रदाय जगत को स्वप्नवत मिथ्या मानता है, परमात्मा से प्रथक जीव की भी स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानता है। तब जीव का बद्ध और मुक्त मानना, ब्रह्म और जीव का पिता पुत्र-वत सम्बन्ध मानना और सम्बन्ध को अनादि बताना आपका अपने ही मत का खण्डन करना है। आप स्वयं मिथ्या हैं, आपका लिखना बोलना ब्रह्म जीव की बातें करना यह सब जब स्वप्नवत मिथ्या है तो आप यह सारी बकवास क्यों कर रहे हैं। यदि जीव और ब्रह्म का व्याप्य व्यापक, पिता पुत्र का सम्बन्ध अनादि है दो दोनों की सत्ता स्वतन्त्र व अनादि हुई। तो फिर आपका जीव ही परमात्मा है, घटाकाश मठा-काशवत् का उनका दृष्ठान्त देना मिथ्या हुआ। अंश अंशी का सम्बन्ध बताना भी उनमें मिथ्या हुआ। ब्रह्म ही अपने को अज्ञान से जीव मानने लगा है, यह कहना भी मिथ्या हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि अखंड सिद्धान्त के लेखक ने मद्य पान करके नशे में बेतुके उसूल गढ़ रखे हैं। जीव और परमेश्वर को अनादि मानकर विपक्षी ने अपने सारे अद्वैतवाद के सिद्धान्त को झूठा मान लिया है। बधाई है !

वेदान्ती—वेदान्त में जड़ चेतन दो भिन्न २ सत्ता नहीं हैं, सत्ता एक ही है। (अ० सि० पृ० २६३)

वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि पत्थर धातु आदि भी कुछ न कुछ चोट का अनुभव करते हैं। (अ० सि० पृ० २६२)

उत्तर—आपकी बात ऐसी ही गल्प है जैसे जीवित डाक्टर और मुर्दे को एक बताना है, आपको और आपके पैर के जूतोंको एक बाताना हैं, आपको चैतन्य और जड़ शब्दों के अर्थ भी नहीं आते हैं। ज्ञानवान, दुःख सुख को अनुभव करने, समझ रखने की क्षमता वाली, प्राण व जीवात्मा से संयुक्त सत्ता चैतन्य मानी जाती है तथा निर्जीव पदार्थ जड़ माने जाते हैं। पत्थर, लोहा को जानदार चैतन्य बताना आपकी बुद्धि हीनता का प्रमाण है। यदि ईंट चैतन्य है तो चूल्हे में उसे लगाकर रोज जलाने वाले आप लोग महान हत्या के दोषी क्यों नहीं हैं। पैन्सिल चैतन्य है, तो उसे चाकू से काट कर बनाने से आप हत्यारे क्यों नहीं हैं ? कपड़ा चैतन्य है तो उसे काटने,फाड़ने सुई से सीने, डंडों से पीट कर धोने से आप हत्यारे क्यों नहीं हैं। पत्थर का कोयला व लकड़ी चैतन्य हैं तो उन्हें जलाने वाले, गेंहू (रोटी) को खा जाने वाले आप हत्यारे क्यों नहीं है। यदि आप लोग किसी स्कूल में पढ़कर विद्या प्राप्त कर लेवें तो उत्तम होगा वरना संसार आप की मूर्खता की बातों पर हँसेगा।

वेदान्ती—माया ब्रह्म से भिन्न नहीं है....किन्तु माया अपने कारण ब्रह्म में कल्पित है। (अ० सि० पृ० २६७)

उत्तर—आपकी बात से प्रगट हो गया कि माया का कोई अस्तित्व वस्तुतः नहीं हैं किन्तु भोले बे पढ़े लोगों को बेवकूफ बनाने व ठगने के लिए आप लोगों ने फर्जी कल्पना (झूठी कल्पना) माया की कर रखी है। तब आप भी झूठे आदमी हैं और आप का सम्प्रदाय भी झूठा मायावी है। वह लोगों को झूठी बातें अद्वैतवाद की बताकर चेले फांसता व ठगता फिरता है।

वेदान्ती—'एको ब्रह्म द्वितीयोनास्ति' यह भी बताता है कि जगत ब्रह्म ही है उसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।

उत्तर—इसका अर्थ आपने गलत समझा है। इसका सीधा अर्थ है कि ब्रह्म एक ही है, दो चार ब्रह्म नहीं हैं। यदि कोई यह मानने लगे कि अनेक ब्रह्म हैं, कुछ माया से प्रभावित जीव रूपी ब्रह्म है कोई माया से अप्रभावित ब्रह्म हैं तो उनकी बात का खण्डन इसमे हो जाता है। ब्रह्म एक ही है, दूसरा कोई ब्रह्म नहीं है। इसलिए उक्त प्रमाण में आपके मत का खण्डन विद्यमान है।

वेदान्ती—हमारे परम गुरु ने अखण्ड सिद्धान्त पुस्तक में स्पष्ट लिखा है 'अवश्य मेरा यह ग्रन्थ असत्य है और असत्य मान कर त्यागने योग्य है। परन्तु वह कब, ज्ञान हो जाने पर। (अ०सि०पृ० २७७)

उत्तर—आपके गुरुजी को अपना अज्ञान मिटाना चाहिए कि अद्वैतवाद में ब्रह्म को आप अज्ञानी मानते हैं। ब्रह्म को अज्ञान से क्या मतलब ? वह तो सर्वज्ञ सत्ता है। अतः आपके मत में संसार में जब सब एक मात्र ब्रह्म ही ब्रह्म है तो फिर अज्ञान दूर होने व ज्ञान आजाने की बेतुकी बात करना आपके गुरुजी को अज्ञानी सिद्ध करता है। उनकी पुस्तक तो स्वयं मिथ्या, अज्ञान से युक्त है। उसे तो तुरन्त नष्ट कर देना चाहिए। क्योंकि जब लेखक ही अपनी कलम से उसे मिथ्या घोषित कर चुका है तो उस झूठी किताब का प्रचार करना भी बुरी बात है और उसकी झूठी बातों को आप को नहीं मानना चाहिए। आखिर आपको स्वीकार करना ही पड़ा कि आपके मत की सब किताबें और बातें सर्वथा झूठी है। "जादू वह है जो सर पर चढ़ कर बोले" उसे ही जादू कहते हैं।

इसी प्रकार की दशा आद्य शंकराचार्य की रही है। उन्होंने जगत को स्वप्नवत् मिथ्या माना है किन्तु अपने पक्ष को सिद्ध करने में प्रमाण भी उसी मिथ्या जगत के ही दिये हैं। किसी भी बात के समर्थन में जिसको वादी मिथ्या घोषित करता हो तो उसे मिथ्या बात का दृष्टान्त या प्रमाण नहीं देना चाहिये। वैसा करने से उसका पक्ष स्वतः मिथ्या सिद्ध हो जाता है। सत्य के पक्ष की सिद्धि के लिए तर्क व प्रमाण तथा

दृष्टान्त वही दिया जा सकता है जो वादी प्रतिवादी दोनों को स्वीकार हो सके। अतः शंकर स्वामी का पक्ष भी इन्हीं के तर्क आधार पर मिथ्या अथवा असिद्ध प्रमाणित है। जब सभी कुछ मिथ्या है और वेदान्ती की वाणी, लेख, शरीर उसका अस्तित्व भी मिथ्या उसी के सिद्धान्त से है तो स्वतः सभी कुछ सत्य सिद्ध हो जाता है। यह अद्वैत-वाद का सारा भ्रान्त किला स्वप्नवत स्वतः नष्ट हो जाता है।

हमारा कहना सभी से यह है कि यदि किसी के यहां अपने को परमात्मा बताने वाला कोई वेदान्ती आजावे तो उसका सामान व कपड़े उतरवा लिए जावें और उससे कह दिया जावे कि 'ब्रह्म (परमेश्वर) को किसी भी वस्तु की कोई आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि वह पूर्ण हैं। अब क्यों कि तुम भी परमेश्वर अपने को बताते हो तुम्हें भी खाना पानी, कपड़ा, रुपया पैसा चश्मा, लोटा आदि किसी की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। तुम भी ब्रह्म हो, यह सब सामान भी ब्रह्म है और हम लोग भी ब्रह्म हैं ब्रह्म से ब्रह्म ने, ब्रह्म को छीन लिया तो कोई पाप वा पुण्य नहीं है। क्यों कि ब्रह्म पाप पुण्य से मुक्त है।"

ऐसा करने से उसका परमात्मा बनने का नशा उतर जावेगा। इन झूठे परमात्मा (ब्रह्म) बनने वालों को ठीक रास्ते पर लाने का यही सरल प्रकार है।

वेदान्ती—शंकर और रामानुज दोनों ही पूर्ववर्ती विद्वान अद्वैत-वाद के पोषक थे।

उत्तर—आपने दोनों समझा नहीं है। शंकर अद्वैतवादी थे और रामानुजाचार्य विशिष्ठाद्वैत अर्थात् त्रैतवादी थे। शंकराचार्य मानते थे कि ब्रह्म का एकत्व अद्वितीय है, पर रामानुजाचार्य यह सिद्ध करते हैं कि वह एकत्व अद्वितीय नहीं है किन्तु वह दो अन्य पदार्थों अर्थात् जीवात्मा तथा जड़ प्रकृति से विशिष्ठ है। इस प्रकार विशिष्ट ब्रह्म को रामानुजाचार्य विशिष्ठाद्वैत कहते थे जिस में ब्रह्म के लक्षण सत्-चित आनन्द बताते थे। जीवात्मा को अणु चैतन्य तथा प्रकृति को जड़

मानते थे। वे ब्रह्म को इन दोनों में ठीक इसी प्रकार व्यापक मानते थे जैसे कि जीवात्मा शरीर में व्यापक होता है। उनकी मान्यता थी कि कोई भी जड़ पदार्थ बिना परमात्मा की उसमें व्यापक सत्ता के स्थिर नहीं रह सकता है, कोई आत्मा प्रकृति और ब्रह्म के बिना नहीं रह सकता है और ईश्वर भी आत्माओं और प्रकृति के बिना नहीं रहता है। जीवात्मा जिस तरह शरीर में व्यापक रह कर उसे चलाता है उसी प्रकार परमात्मा सर्व व्यापक रूप से जीवात्मा तथा जड़ जगत को धारण करता है, प्रकृति का नियन्त्रण करता है, प्रत्येक पदार्थ के अन्दर विद्यमान व्यापक रहता है।

किन्तु शंकर ने क्यों कि केवल एक ब्रह्म की सत्ता स्वीकार की थी अत: उनके लिए यह कहना आवश्यक हो गया कि समस्त दृश्यमान विश्व मिथ्या है। उन्होंने नाम रूपात्मक जगतको स्वप्नवत देखने वाला मान लिया था। रामानुज तीनों पदार्थ ब्रह्म जीवात्मा तथा जड़ प्रकृति को नित्य सत्ता मानते थे, अत: वे अद्वैतवादी न होकर त्रैतवादी थे। उनका विशिष्ठाद्वैतवाद वस्तुत: त्रैतवाद ही था जैसा कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने वेदों के आधार पर स्वीकार किया।

शंकर को वेद भी यथावत स्वीकार नहीं थे। वे केवल अपने पक्ष के उन मन्त्रों को ही मान्यता देते थे जिनसे उनकी मा यता का अर्थों को तोड़ मरोड़ कर समर्थन होता था। त्रैतवाद के प्रतिपादक मंत्रों को वे स्वीकार ही नहीं करते थे यह शंकर की मान्यता में एक भारी दोष था। उसी प्रकार उन्होंने उपनिषदों के अर्थों में भी भारी तोड़ मरोड़ की है जो कि सत्य के प्रति अत्याचार है तथा उपनिषदों की भावना तथा स्थापना के विपरीत है। वेद, शास्त्रों का मुख्य सिद्धान्त ही त्रैतवाद है वेद अपौरुषेय होने से सभी सर्वथा मान्य होने चाहिए। यदि वेद की किसी बात को कोई व्यक्ति ठीक से नहीं समझ पाता है या उसे कहीं कहीं बिरोध उनमें प्रतीत होता है तो यह उसके अर्थों की उचित संगति न लगा पाने में उस व्यक्ति की अल्पज्ञता

का ही दोष है, न कि वेदों के अन्दर कोई कमी होने की उसे शिका-यत करने का अधिकार है।

वेदान्ती—आप 'शिवोऽहम्' का क्या अर्थ लेते हैं ? हम तो इस का अर्थ यह लेते हैं कि हम शिवजी हैं।

उत्तर-शिव शब्द का अर्थ कल्याण करने वाला होता है दूसरा अर्थ शिव शब्द का महादेव जी होता है जो कि पौराणिकों का कल्पित देवता है। वह तीन नेत्रधारी, जटा मुण्ड माला, त्रिशूल व व्याघ्र चर्म धारी, पार्वती तथा सती का पति, भूत प्रेत पिशाचों का राजा, मरघट-वासी, भूटान का राजा भूत (भूतिया वा भोटिया) जाति का स्वामी था जैसा कि पौराणिक मानते हैं। कोई वेदान्ती वैसा शिव तो बन नहीं सकता है, तथा अपने को कल्याणकारी कहते फिरना मिथ्या आत्म प्रशंसा वा अभिमान करना होगा जो कि बुरी बात है। अतः किसी का भी शिवोऽहम् कह कर अपने को शिव बताना पाखण्ड है।

वेदान्ती—हम लोग अपने से प्रथक किसी अन्य ब्रह्म का स्मरण करना गलत समझते हैं, हम अपना ही स्मरण वा ध्यान करते हैं तो इसमें क्या त्रुटि है ?

उत्तर—स्मरण वा ध्यान सदैव अपने से भिन्न सत्ता वाली वस्तु का ही सम्भव होता है, अपना ध्यान तो हो ही नहीं सकता है। अपने से पथक किसी भी पदार्थ के स्वरूप का चिन्तन होता है अथवा उसके गुणों वा कार्यों का ध्यान किया जाता है। इसी प्रकार विश्वाधार ब्रह्म के कार्यों तथा गुणों का स्मरण करते हुए उस सब व्यापक रूप से अपने अन्दर रूप से अनुभव करने को उसका ध्यान किया जाता है। जीव तो स्वयं अपने अन्दर अपने को किसी भी रूप में न तो अनुभव कर सकता है और न अपने ही कार्यों का स्मरण करने से कुछ प्राप्त हो सकता है। परमात्मा के चिन्तन से उसका मनोबल बढ़ता है, पवि-त्रता आती है, निर्भयता, बुद्धि का विकास आत्मा की उन्नति व आनन्द की प्राप्ति होती है आदि अनेक लाभ उसे मिलने हैं। जब कि अपने

कामों का ही दिन रात चिन्तन करते रहने से अनेक लोग पागल हो चुके हैं तथा व्यर्थ समय की बरबादी होती है।

वेदान्ती हमारी मान्यता है कि जैसे स्वप्न का दृश्य मिथ्या होता है वैसे ही जो कुछ जाग्रत में देखता वा करता है वह भी मिथ्या होता है।

उत्तर—आपकी मान्यता के अनुसार स्वप्न के पदार्थ संसार की अपेक्षा से मिथ्या हैं तो संसार के पदार्थ किसकी अपेक्षा से मिथ्या हैं? यदि जाग्रत अवस्था सत्य है तो स्वप्न के पदार्थ वा दृश्य मिथ्या नहीं हो सकते हैं क्यों कि जाग्रत में देख सुन वा स्पर्श करने से जो संस्कार मस्तिष्क में जमा होते हैं वे ही स्वप्न में विविध प्रकार से दीखते व अनुभव होते हैं। दूसरे जाग्रत को सत्य मानकर ही स्वप्न को मिथ्या आप मानते हैं। तब आपके स्वप्न को मिथ्या कहने से जाग्रत अवस्था स्वतः सत्य सिद्ध हो जाता है क्योंकि जाग्रत अवस्था आने पर स्वप्न का अभिमान वा अनुभव नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार आपका तर्क व प्रमाण आपकी ही मान्यता से खण्डित हो जाते हैं। शंकर स्वामी के तर्क भी इसी प्रकार हास्यास्पद थे। वे भी ऐसी ही बात कहते थे कि जगत मिथ्या है क्योंकि वह दीखता है अतः स्वप्नवत् उसका दीखना अमान्य है। क्यों कि इन्द्रियों के द्वारा जाग्रत अवस्था में जगत के पदार्थों का अस्तित्व प्रतीत होता है अतः स्वप्नवत वह प्रतीति भ्रांत होने से अमान्य है, ऐसा अद्वैतवादी मानते हैं। तब यदि यह कह दिया जावे कि निराकार ब्रह्म व वेदान्ती के जीवात्मा का अस्तित्व मानना भी उसकी भ्रान्ति है तो विपक्षी उनका अस्तित्व भी किसी तर्क से सिद्ध नहीं कर सकेगा। ज्ञान वा सत्यासत्य निर्णय का आधार वा साधन भी जीव के लिए उसको दी गई शारीरिक इन्द्रियां मन बुद्धि आदि हैं जिनसे जाग्रतावस्था में वह ज्ञान करता है। यदि वे सभी मिथ्या मानी जावेंगी तो वेदान्ती को लोग उन्माद ग्रस्त मानने पर विवश होंगे।

वेदान्ती—यह जगत आदि में नहीं था, अन्त में भी नहीं रहेगा अतः मध्य में भी नहीं है, केवल दृष्टा को भ्रान्ति है।

उत्तर–रोटी आदि में नहीं थी, खाने के बाद भी नहीं रहेगी किन्तु मध्य में है और उसको खाने से तुम्हारी भूख मिट जाती है अतः मध्य (वर्तमान) में उसका अस्तित्व है। वेदान्ती आदि में नहीं था, मरण के बाद भी नहीं रहेगा किन्तु जन्म के बाद से मरण तक वह है, उसका अस्तित्व भी है। तो क्या आपके अनुसार आप इस समय नहीं हैं ? ठीक ऐसे ही जगत का प्रत्येक पदार्थ अपनी उत्पत्ति से पूर्व नहीं था, उत्पत्ति के बाद उसका अस्तित्व सत्य होता है तथा नष्ट होने के बाद अस्तित्व विहीन हो जाता है। भूतकाल अब नहीं है, भविष्य आगे होगा किन्तु वर्तमान तो है। वर्तमान की ही अपेक्षा से भूत तथा भविष्य का अस्तित्व सिद्ध होता है। अतः वेदान्तियों का यह कुतर्क भी मिथ्या है।

वेदान्ती–यह जगत ब्रह्म से बना है और अन्त में ब्रह्म में ही विलीन होकर उसका अभाव हो जाता है।

उत्तर–किसी की पदार्थ के नष्ट होने का अर्थ होता है उसका कार्य रूप नष्ट होकर उसका अपने उपादान कारण में लय हो जाना अथवा रूपान्तरित हो जाना। जगत जड़ भौतिक परमाणुओं के संयोग से बना है, प्रलय में यह पुनः परमाणु रूप होकर शून्याकाश में स्थिर रहेगा। पुनः काल आने पर (धाता यथा पूर्वं कल्पयत् अनुसार) परमात्मा (निमित्त कारण रूपसे) उन्हीं परमाणुओं से पुनः कार्य रूप जगत की रचना कर देगा।

जड़ से चैतन्य की उत्पत्ति जिस प्रकार नहीं होती है उसी प्रकार चैतन्य परमात्मा से जड़ जगत की उत्पत्ति नहीं होती है। यदि ब्रह्म ने जड़ जगत को अपने में से बनाया होता अथवा वह स्वयं जड़ जगत के रूप में परिवर्तित हो गया होता 'तो कारण गुण पूर्वक: कार्य गुणो दृष्ट:' के अनुसार उपादान कारण ब्रह्म के गुण चैतन्यता व ज्ञानादि प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान होने चाहिये जो कि नहीं हैं। अतः ब्रह्म ही जगत बन गया वही इसका निमित्तोपादान कारण है, यह कहना वेदान्तियों का मिथ्या है।

इसी प्रकार आपका जीव को ब्रह्म वा उसका अंश मानना भी मिथ्या है। कठोपनिषद में स्पष्ट लिखा है—

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२।१८।

अर्थ—यह ज्ञानस्वरूप आत्मा न उत्पन्न होता है, और न मरता है। यह न किसी से उत्पन्न हुआ है और न इससे कुछ उत्पन्न होता है। यह आत्मा जन्म रहित, नित्य, अविनाशी और अनादि है। इसका शरीर के नाश होने पर भी नाश नहीं होता है।

उपनिषद का यह प्रमाण जीवात्मा को ब्रह्म से उत्पन्न वा उसका अंश मानने को निषेध करता है। वह जीवात्मा को परमात्मा के ही समान अनादि अनन्त नित्य सत्ता स्वीकार करता है। वह जीवात्मा को एक देशीय, जन्ममरण के चक्र में घूमने वाला घोषित करता है। अतः अद्वैतवाद का इससे भी खण्डन हो जाता है।

—:(०):—

अद्वैत वादियों के वेद प्रमाण

वेदान्ती—वेद में अद्वैतवाद के समर्थं अनेक प्रमाण विद्यमान हैं, यथा—

(१) हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्ष सद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वर सदृतसद्व्योम सदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्।
ऋ० ३।७।१४।५॥

(२) अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेहं कविरुशना पश्यता मा॥
ऋ० ३।६।१५।१॥

(३) गर्भे नु सन्नन्वेषामवेद महं देवानां जनिमानि विश्वा।
शतं मा पुर आयसीर रक्षन्नधः श्येनो जवसा निरदीयम्॥
ऋ० ३।६।१६।१॥

(४) अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्च राम्यह मादित्यै रुत विश्व देवैः ।
अहं मित्रा वरुणोभा विभर्म्यह मिन्द्राग्नी अहमश्विनामा ॥
ऋ० ८।७।११।१।

(५) रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरु रूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश ॥
ऋ० ४।७।३३।१८॥

(६) चत्वारि श्रंगास्त्रयोऽस्य पादाद्वशीर्षे सप्त हस्तासोऽस्य ।
त्रिधा वद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या आ विवेश ॥
ऋ० ३।८।११।३॥

इन सब वेद मन्त्रों में परमात्मा के अद्वैत स्वरूप का स्पष्ट वर्णन विद्यमान है ।

(कल्याण मासिक का वेदान्त अंक पृ० १०८ व १०६)

उत्तर—आपने इन वेद मंत्रों का अर्थ नहीं समझा है । इनमें अद्वैतवाद का नाम निशान भी नहीं है । इन वेद मंत्रों का अर्थ संक्षेप में निम्न प्रकार समझना चाहिए ।

(१) जीवात्मा (हंसः) हस के समान सत्यासत्य का विवेक करने वाला (शुचि सद्) शुद्ध स्वरूप में विद्यमान (अन्तरिक्ष सद्, पृथ्वी के आकाश के मध्य में वर्तमान (होता) सुख दुःखों का भोक्ता (वेदि षट) शरीर रूपी यज्ञ वेदि में स्थित (अतिथि) यत्र तत्र इच्छानुसार आने जाने वाला (दुरोण सद्) घर में स्वामीवत् निवास करने वाला (नृ-सद्) शरीर के अन्दर प्राणों में नेता के तुल्य विद्यमान (अब्जाः गोजाः) शरीरस्थ जल तत्वों एवं ज्ञायेन्द्रियों में व्यापक रूप से प्रगट (ऋतजाः) सत्य में स्थित (अद्रिजाः) मेघों में जलवत् सर्व व्यापक ब्रह्म में स्थिति, स्वयं (ऋतम्) ज्ञान मय परमेश्वर को पुरुषार्थ से प्राप्त होता है ।

(२) वेद में परमेश्वर कहता है (अहं मनुरभवम्) मैं समस्त विश्व का ज्ञाता हूँ । (अहं सूर्यः च) मैं सूर्य के समान सब का जीवनाधार एवं प्रेरक हूं । मैं (कक्षीवान्) समस्त लोकों में व्यापक हूं । मैं (विप्रः)

संसार को ज्ञान व कर्मफल प्रदाता, सर्वज्ञ (ऋषिः अस्मि) सर्व द्रष्टा एवं ज्ञान का देने वाला हूँ। (अहं आर्जुनेयं कुत्सं) विद्वान जैसे दिव्य शस्त्रास्त्र से शत्रुओं का विनाश करते हैं वैसे ही मैं भक्तों को उनके विघ्नों का नाश करके (ऋञ्जे) अपनाता हूं। अहंकविः मैं क्रान्ति दर्शी (उशनाः) सबको प्रेम से चाहने वाला हूं। (मा पश्यत) मुझको साक्षात्कार करो। परमात्मा उक्त गुणों से युक्त हैं, सभी को उसका साक्षात्कार करने का उद्योग करना चाहिए।

(३) (अहं गर्भे नु सन्) मैं शरीर के मध्य में विद्यमान होकर (एषां देवानां) इन इन्द्रियों के द्वारा (विश्वाजनिमानि अनुसवेदम्) समस्त इन्द्रिय जन्य भोगों को अपने अनुकूल प्राप्त करता हूं। (आयसीपुरः) राजा की रक्षक नगरों के समान (मां शतं आयसीः) मुझको सैकड़ों चेतना से युक्त शरीर के घटक रूपी (शतं पुरः) नगरियां कोष वा शक्तियां (अरक्षन्) रक्षा करती है। (श्येनः जवसानिरअदीयम्) मैं मृत्यु के समय (श्येन पक्षी जैसे घोंसले को छोड़ता है वह वैसे ही) शरीर को छोड़ कर उसमें से निकल जाता हूं।

(४) परमेश्वर कहता है (अहं) मैं रूद्रेभिः वसुभिः चरामि) जीवों के प्राणों पृथ्वी आदि लोकों के साथ विचरता हूं वा उनमें व्यापाक हूं। (अहं आदित्यैः उत विश्वे देवैः) में बाहर मासों और समस्त प्रकाश मान लोकों में व्यापक हूं या विचरता हूं। (मित्रा वरुणी) दिन और रात (उभा अहम् विभर्मि) दोनों को मैं ही धारण करता हूं। (इन्द्राग्नी अश्विाना) सूर्य और अग्नि, प्राण और उदान (उभा) दोनों को (अहम्) धारण करता हूँ।

[५] [इन्द्रः] ऐश्वर्यवान राजा [रूपे रूपं] [प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति का [प्रति रूपं बभूव] प्रतिनिधि होता है। [अस्य] इस राजा का [तद्] वह रूप [प्रति चक्षणाय] प्रत्यक्ष में कहने का वर्णन करने के लिए है। [इन्द्रः] राजा [मायाभिः] नाना शक्तियों से [पुर रूपः ईयते] बहुत प्रकार से जाना जाता है। [अस्य शता दश] उसके आधीन

हजारों ही [हर्यः युक्ताः] मनुष्य नियुक्त रहते हैं।

[६] [चत्वारि श्रृंगा अस्य] इस यज्ञ कर्ता पुरुष के चार सींग चार वेद हैं। [अस्य त्रयः पादाः] इसके तीन पाद तीन ऋग् यजुः साम हैं [द्वे शिरः] दो सिर अभ्युदय और निःश्रेयस हैं मुख्य ध्येय हैं [अस्य सप्त हस्तासः] इसके सात हाथ पंच ज्ञानेन्द्रिय अन्तःकरण और आत्मा ये साधन हैं। [त्रिया बद्धः] वह तीन वाणी कर्म और मनसे बंधा है [वृषभः रोरवीति] वह यज्ञ के समय वृषभ वा मेघ के तुल्य शब्द करता है। वह [महः देव] महान विद्वान [मर्त्यान् आविवेष] मनुष्यों के मध्य में प्रवेश करता है।

उक्त वेद मंत्रों के इन अर्थों से स्पष्ट है कि इनसे अद्वैत की सिद्धि किसी भी प्रकार नहीं होती है।

अद्वैतवाद के खण्डन में चन्द वैदिक प्रमाण

ओ३म् ! विश्वानि देव सवितर्दुरितानिपरासुव: यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ जीव प्रार्थना करते हैं कि हे जगत् को उत्पन्न करने वाले परमात्मन् ! हमारे अन्दर से दुर्गुणों को दूर कीजिए और जो श्रेष्ठ गुण हैं वे हमें प्राप्त कराईये।

इस मंत्र में जीवात्मा प्रार्थी है और जगत्कर्ता ब्रह्म से प्रार्थना करता है। अतः जीवात्मा, परमात्मा तथा जगत् तीनों की सत्ता स्पष्ट सिद्ध है।

हिरण्य गर्भः समवर्तताग्रे भूतस्यजातः पतिरेक आसीत्। सदाधार पृथिवीं द्यामुते माम् कस्मैं देवाय हाविषों विधेम ॥

वह परमेश्वर इस पृथ्वी के उत्पन्न होने से पूर्व वर्तमान था, वही इस विश्व का (पृथ्वी एवं द्यो लोक का) एक मात्र पति [स्वामी] था। उस सुख स्वरूप परमेश्वर की हम भक्ति करें।

इस मंत्र में परमात्मा, जगत, तथा प्रार्थना करने वाले जीवों का प्रथक २ अस्तित्व स्वीकार किया गया है।

प्रधान्वस्य महतो महानि, सत्या सत्यस्य करणानिवोचम् ।।
ऋ० २।१५।१

अर्थ – [अस्य महतः सत्यस्य] इस महान सत्य स्वरूप ब्रह्म के [करणानि] कार्य भी [महानि] महान् [च सत्या] और सत्य हैं। यह मैं [परमेश्वर] [प्र अनुवोचम्] स्पष्ट रूप से प्रगट करता हूं।

प्रसावीद् देवः सविता जगत् प्रथक् ।। ऋ० १।१५१।१

[सविता देव] जगत को उत्पन्न करने वाले ब्रह्म ने [प्रथक जगत्] इस उत्पत्ति एवं विनाश धर्मा संसार को जो उस [ब्रह्म] से भिन्न है [प्रसावीत्] बनाया है।

इसमें उत्पन्न हुए जगत और ब्रह्म की प्रथक-प्रथक सत्ता स्पष्ट रूप से स्वीकार की गई है। सत्रा सोमा अभवन्नस्य विश्वे सत्रा मदासो बृहतो मदिष्ठाः। ऋ० ४।१७।६

[अस्य विश्वे सोमाः] इस परमेश्वर के सब उत्पन्न किये हुए पदार्थ [सत्रा अभवन्] सर्वथा सत्य है। [अस्य बृहतः] इस महान परमेश्वर के [मदासः मदिष्ठा] आनन्द जीवों को मस्त बनाने वाले हैं।

इसमें बताया गया है कि ब्रह्म ने विश्व को उत्पन्न किया है। ब्रह्म के आनन्द से जीव आनन्दित होते हैं। ब्रह्म के द्वारा उत्पन्न जगत सत्य है। उसे मिथ्या वा कल्पित बताना गलत है। ब्रह्म, जीवात्मा एवं जगत तीनों की सत्य सत्ता इस वेद मन्त्र में स्वीकार की गई है।

यो भूता नाम धिपतिर्यस्मिंल्लोका अधिश्रिताः।
य ईशे महतोमहान् तेन गृह्णामि त्वामहंमयि गृह्णामित्वामहम् ।।
यजु० २०।३२

अर्थ–जो परमेश्वर समस्त प्राणी जगत का स्वामी है। तथा सम्पूर्ण लोक लोकान्तर जिस परमात्मा के आश्रित हैं, जो परमात्मा बड़ों से भी बड़ा अत्यन्त महान है, उस परब्रह्म परमात्मा

को मैं ग्रहण करता हूं। हे परमात्मन्। मैं तुझको ग्रहण करता हूं।

इस मंत्र में जीवात्मा, परमात्मा व सम्पूर्ण विश्व की सत्ता स्वीकृत है। यह सारे के सारे वेद मंत्र अद्वैतवादियों के मिथ्या सिद्धान्तों का खण्डन करने को पर्याप्त हैं।

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वे अस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्व रूपाः।
अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ॥

मुण्ड० २।९॥

महर्षि अङ्गिरा कहते हैं कि हे शौनक! इसी ब्रह्म ने सारे समुद्र और पर्वत उत्पन्न किए हैं इसी ब्रह्म की शक्ति से नदियां बहती हैं, इसी ब्रह्म ने सम्पूर्ण प्रकार के अन्न और रस, औषधियां आदि तथा उनसे बने हुए भौतिक शरीर में जीवात्मा को प्रतिष्ठित किया हुआ है।

इस मंत्रमें पहाड़, नदियां, औषधियां. जीव, शरीर रस सभी का अस्तित्व स्वीकार किया गया है। जो अद्वैतवादी यह कहते हैं कि सूर्य चन्द्रमा, पृथ्वी अन्न औषधि शरादि वास्तव में केवल स्वप्न में दीखने वाले दृश्य के समान मिथ्या हैं, इनका कोई भी सत्य अस्तित्व नही है केवल धोखा वा भ्रम है, वह इस मंत्र को देख कर जगत के वास्तव में सत्य होने की बात आंख खोल कर स्वीकार कर लेवें।

सम्पूर्ण वैदिक शास्त्र, वेद, उपनिषद, दर्शन, स्मृतियां, ब्राह्मण ग्रन्थ आदि ईश्वर जीव प्रकृति की सत्ता को स्वीकार करके त्रैतवाद का प्रतिपादन करते हैं अद्वैतवाद की भ्रान्ति में पड़ें लोगों को उनको पढ़ कर अपने अज्ञान को मिटा लेना चाहिये।

ईशावास्य मिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्॥ यजु० ४०।१॥

ईश्वर से अच्छादित है यह जो कुछ भी जगत (ज=उत्पन्न होने व, गत=नाश होने वाला संसार है। अर्थात् परमात्मा इस उत्पन्न होकर विनष्ट होने वाले इस सम्पूर्ण जगत् में भीतर बाहर सर्वत्र ओत-प्रोत एक रस व्याप्त है। इस जगत के पदार्थों का त्याग किए हुए

पदार्थों के समान भोग करो। इस वेद मन्त्र में परमेश्वर, भौतिक उत्पत्ति विनाश धर्मा जगत तथा उसे भोगने वाले जीवों का अर्थात् तीनों की प्रथक-प्रथक सत्ता की विद्यमानता स्पष्ट रूप से स्वीकार की गई है। यही सच्चा वैदिक त्रैतवाद है। नवीन वेदान्तियों का निराधार एवं मिथ्यावाद है।

पश्येम शरदः शतम्। श्रृणुयाम शरदः शतम्'। यजु, ३६।२४।

वेद की इस प्रार्थना में जीव प्रार्थना करता है कि मैं शत वर्ष तक संसार के दृश्य देख, श्रेष्ठ बातों को अपने कानों से सुनता रहूं इत्यादि। यह प्रार्थना सिद्ध करती है कि देखने वाला और देखे जाने वाले पदार्थ वा जगत सत्य हैं, सुने जाने वाले शब्दों का भी अस्तित्व है। जाग्रत अवस्था में देखा सुना जाने वाला व्यवहार स्वप्नवत् मिथ्या नहीं है। देखते सुनने वाला जीव भी सत्य है। इस प्रकार नवीन वेदान्तियों का जगत, जगत जीव जाग्रत में दिखाई देने वाले पदार्थों को मिथ्या बताना ही गलत है और अमान्य है।

—:(०):—

पुकारने का सामर्थ्य नहीं, इसलिए मञ्चस्थ मनुष्य पुकारते हैं। इसी प्रकार यहां भी जानना। कोई कहे कि ब्रह्मस्थ सब पदार्थ है, पुनः जीव को ब्रह्मस्थ कहने में क्या विशेष है। इसका उत्तर यह है कि सब पदार्थ ब्रह्मस्थ हैं परन्तु जैसा साद्धर्म्य युक्त जीव है वैसा अन्य नहीं और जीव को ब्रह्म का ज्ञान और मुक्ति में वह ब्रह्म के साक्षात्सम्बन्ध में रहता है। इसलिए जीव का ब्रह्म के साथ तात्स्थ्य व तत्सहरितोपाधि अर्थात् ब्रह्म का सहकारी जीव है। इससे जीव और ब्रह्म एक नहीं। जैसे कोई किसी से कहे कि मैं और यह एक हैं अर्थात् अविरोधी हैं वैसे जो जीव समाधिस्थ परमेश्वर में प्रेमबद्ध होकर निमग्न होता है वह कह सकता है कि मैं और ब्रह्म एक अर्थात् अविरोधी एक अवकाशस्थ हैं। जो जीव परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल अपने गुण कर्म स्वभाव करता है वही साधर्म्य से ब्रह्म के साथ एकता कह सकता है।

प्रश्न—अच्छा तो इसका अर्थ कैसा करोगे? (तत्) ब्रह्म (त्वं) तू जीव (असि) है। हे जीव (त्वम्) तू (तत्) वह ब्रह्म (असि) है।

उत्तर तुम 'तत्' शब्द से क्या लेते हो? [वेदान्ती] ब्रह्म" [स्वामी जी] ब्रह्म पद की अनुवृत्ति कहां से लाये?

वेदान्ती—सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवा द्वितीयं ब्रह्म। इस पूर्व वाक्य से।

(स्वामीजी)—तुमने इस छान्दोग्य उपनिषद का दर्शन भी नहीं किया। जो वह देखी होती तो वहां 'ब्रह्म' शब्द का पाठ है। ऐसा झूठ क्यों कहते। किन्तु छान्दोग्य में तो—सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवा द्वितीयम्। (छा० प्र० ६ खं० २ मं० १) ऐसा पाठ है वहां ब्रह्म शब्द ही नहीं।

प्रश्न—तो आप तत्छब्द से क्या लेते हैं?

उत्तर—स य एषोणिमा। एतदात्म्य मिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्वमसिश्वेत केतो। इति॥ छान्दो०

(प्र० ६। खं० ८। मं० ६।७)

महर्षि दयानन्द सरस्वती और नवीन वेदान्त

श्री स्वामी जी महाराज ने अपने जगत् विख्यात ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में नवीन वेदान्त की प्रश्नोत्तर रूप में समीक्षा की है। हम उसे यहां उद्‌धृत करते हैं।

प्रश्न—जिस जगह में एक वस्तु होती है उस जगह में दूसरी वस्तु नहीं रह सकती। इस लिए जीव और ईश्वर का संयोग सम्बन्ध हो सकता है व्यापक व्याप्य नहीं।

उत्तर—यह नियम समान आकार वाले पदार्थों में घट सकता है असमानाकृति में नहीं। जैसे लोहा स्थूल, अग्नि सूक्ष्म होता है। इस कारण से लोहे में विद्युत अग्नि व्यापक होकर एक ही अवकाश में दोनों रहते हैं, वैसे जीव परमेश्वर से स्थूल और परमेश्वर जीव से सूक्ष्म होने से परमेश्वर व्यापक और जीव व्याप्य है। जैसे यह व्यापक व्याप्य सम्बन्ध जीव ईश्वर का है वैसे ही सेव्य सेवक आधार आधेय स्वामि भृत्य, राजा प्रजा और पिता पुत्र आदि भी सम्बन्ध हैं।

प्रश्न—जो प्रथक २ है तो प्रज्ञानं ब्रह्म ॥१॥ अहं ब्रह्मास्मि ॥२॥ तत्व मसि ॥३॥ अयमात्मा ब्रह्म ॥४॥ वेदों में इन महा वाक्यों का अर्थ क्या है?

उत्तर—ये वेद वाक्य ही नहीं है। किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों के वचन हैं और इनका नाम महावाक्य कहीं सत्य शास्त्रों में नहीं लिखा। अर्थ-(अहम्) मैं (ब्रह्म) अर्थात् ब्रह्मस्थ (अस्मि) हूं। यहां तात्स्थोपाधि है जैसे "मञ्चाहं क्रोशन्ति" मञ्चान पुकारते हैं। मंचान जड़ हैं, उनमें

वह परमात्मा जानने योग्य है। जो वह अत्यन्त सूक्ष्म और इस सब जगत और जीव का आत्मा है। वही सत्य स्वरूप और अपना आत्मा आप ही है। हे श्वेत केतो प्रिय पुत्र !

तदात्मकस्त दन्तर्यामी त्वमसि ॥

उस परमात्मा अन्तर्यामी से तू युक्त है। यही अर्थ उपनिषदों से अविरुद्ध है क्योंकि य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोन्तरोयमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम्। आत्मनोन्तरोयमथति सतआत्मान्तर्याम्य मृतः ॥

यह ब्रहदारण्यक का वचन है। महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी पत्नी मैत्रेयि से कहते हैं कि हे मैत्रेयि ! जो परमेश्वर आत्मा अर्थात जीव में स्थित और जीवात्मा से भिन्न है जिसको मूढ़ जीवात्मा नहीं जानता कि वह परमात्मा मेरे में व्यापक है, जिस परमेश्वर का जीवात्मा शरीर अर्थात् जैसे शरीर में जीव रहता है वैसे ही जीव में परमेश्वर व्यापक है। जीवात्मा से भिन्न रह कर जीव के पाप पुण्यों का साक्षी होकर उनके फल जीवों को देकर नियम में रखता है, वही अविनाशी स्वरूप तेरा भी अन्तर्यामी आत्मा अर्थात् तेरे भीतर व्यापक है उसको तू जान। क्या कोई इत्यादि वचनों का अन्यथा अर्थ कर सकता है ? 'अयमात्मा ब्रह्म" अर्थात समाधि दशा में जब योगी को परमेश्वर प्रत्यक्ष होता है तब वह कहता है, यह जो मेरे में व्यापक है वही ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है। इसलिए जो आज कल के वेदान्ती जीव ब्रह्म की एकता करते हैं वे वेदान्त शास्त्र को नहीं जानते।

प्रश्न—अनेन आत्मना जीवेनानु प्रविश्य नाम रूपे व्याकर वाणि (छा० प्र० ६ खं० ३। मं० २) तत्सृष्ट्वा तेदवानु प्राविशत् ॥ तैत्तिरीय० (ब्रह्मान० अनु० ६)

परमेश्वर कहता है कि मैं जगत और जीव को रचकर जगत में व्यापक और जीव रूप होके शरीर में प्रविष्ट होता हुआ नाम और रूप की व्याख्या करूं। परमेश्वर ने इस जगत और शरीर

को बना कर उसमें वही प्रविष्ट हुआ, इत्यादि श्रुतियों का अर्थ दूसरा कैसे कर सकोगे ?

उत्तर—जो तुम पद पदार्थ और वाक्यार्थ जानते तो ऐसा अनर्थ कभी न करते ? क्यों कि यहां ऐसा समझो एक प्रवेश और दूसरा अनु प्रवेश अर्थात् पश्चात् प्रवेश कहाता है । परमेश्वर शरीर में प्रविष्ट हुए जीवों के साथ अनुप्रविष्ट के समान होकर वेद द्वारा सब नाम रूप आदि की विद्या को प्रगट करता है । शरीर में जीव को प्रवेश करा आप जीव के भीतर अनुप्रविष्ट हो रहा है । जो तुम अनु शब्द का अर्थ जानते तो वैसा विपरीत अर्थ कभी न करते ।

प्रश्न—"सोऽयं देवदत्तो य उष्ण काले काश्यां दृष्टः स इदानीं प्रावृट समये मथुरायां दृश्यते" ।

अर्थात् जो देवदत्त मैंने उष्णकाल में काशी में देखा था उसी को वर्षा समय में मथुरा में देखता हूं । यहां काशी देश उष्ण काल को छोड़कर शरीर मात्र में लक्ष्य करके देवदत्त लक्षित होता है वैसे इस भाग त्याग लक्षण से ईश्वर का परोक्ष देश काल, माया, उपाधि और जीव का यह देश काल, अविद्या और अल्पज्ञता उपाधि छोड़ चेतन मात्र में लक्ष्य देने से एक ही ब्रह्म वस्तु दोनों में लक्षित होता है । इस भाग त्याग लक्षणा अर्थात कुछ ग्रहण करना कुछ छोड़ देना जैसा सर्वज्ञत्वादि वाच्यार्थ ईश्वर का और अल्पज्ञत्वादि वाच्यार्थ जीव का छोड़ कर चेतन मात्र लक्ष्यार्थ का ग्रहण करने से अद्वैत सिद्ध होता है, यहां क्या कह सकोगे ?

उत्तर—प्रथम तुम जीव और ईश्वर को नित्य मानते हो या अनित्य ?

प्रश्न कर्ता (वेदान्ती,—इन दोनों को उपाधिजन्य कल्पित होने से अनित्य मानते हैं ।

उत्तर दाता (स्वामीजी)—उस उपाधि को नित्य मानते हो वा अनित्य ?

वेन्दाती–हमारे मत में—

जीवेशौ च विशुद्धा चिद्वि भेदस्तु तयोद्वया: । अविद्या तच्चितोर्योग: षडस्माकमनादय: । कार्य्योपाधिरयं जीव: कारणोपाधिरीश्वर: । कार्यं कारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते ॥ ये "संक्षेप शारीरिक" और "शारीरिक भाष्य" में कारिका हैं। हम वेदान्ती छः पदार्थों अर्थात् एक जीव, दूसरा ईश्वर, तीसरा ब्रह्म, चौथा जीव और ईश्वर का विशेष भेद, पांचवां अविद्या अज्ञान, और छठा अविद्या और चेतन का योग, इनको अनादि मानते हैं। परन्तु एक ब्रह्म अनादि अनन्त और अन्य पांच अनादि सान्त हैं, जैसा कि प्राग भाव होता है। जब तक अज्ञान रहता है तब तक ये पाँच रहते हैं और इन पांच की आदि विदित नहीं होती इस लिये अनादि और ज्ञान होने के पश्चात नष्ट हो जाते हैं, इस लिए शान्त अर्थात् नष्ट होने वाले हैं।

उत्तर–यह तुम्हारे दोनों श्लोक अशुद्ध हैं क्यों कि अविद्या के योग के बिना और माया के योग के बिना ईश्वर तुम्हारे मत में सिद्ध नहीं हो सकता। इससे "तच्चितोर्योग:" जो छठा पदार्थ तुमने गिना है वह नहीं रहा, क्यों कि वह अविद्या माया जीव ईश्वर में चरितार्थ हो गया। और ब्रह्म तथा माया और विद्या के योग के बिना ईश्वर नहीं बनता। फिर ईश्वर को अविद्या और ब्रह्म से प्रथक गिनना व्यर्थ है। इसलिए दो ही पदार्थ अर्थात् ब्रह्म और अविद्या तुम्हारे मत में सिद्ध हो सकते हैं छः नहीं तथा आपका प्रथम कार्योपाधि कारणोपाधि से जीव और ईश्वर का सिद्ध करना तब हो सकता है कि जब अनन्त नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव सर्व व्यापक ब्रह्म में अज्ञान सिद्ध करें। जो उसके एक देश में स्वाश्रय और स्वविषयक अज्ञान अनादि सर्वत्र मानोगे तो सब ब्रह्म शुद्ध नहीं हो सकता। और जब एक देश में अज्ञान मानोगे तो वह परिच्छिन्न होने से इधर उधर आता जाता रहेगा। जहां जहां जायगा वहां २ का ब्रह्म अज्ञानी और जिस २ देश को छोड़ता जायगा उस उस देश का ब्रह्म ज्ञानी होता रहेगा।

तो किसी देश के ब्रह्म को अनादि शुद्ध ज्ञान युक्त न कह सकोगे। और जो अज्ञान की सीमा में ब्रह्म है वह अज्ञान को जानेगा। बाहर और भीतर के ब्रह्म के टुकड़े हो जायेंगे। जो कहो कि टुकड़ा हो जाओ ब्रह्म की क्या हानि, तो अखंड नहीं। और जो अखण्ड है तो अज्ञानी नहीं। तथा ज्ञान के अभाव वा विपरीत ज्ञान भी गुण होने से किसी द्रव्य के साथ नित्य सम्बन्ध से रहेगा। यदि ऐसा है तो समवाय सम्बन्ध होने से अनित्य कभी नहीं हो सकता और जैसे शरीर के एक देश में फोड़ा होने से सर्वत्र दुःख फैला जाता है, वैसे ही एक देश में अज्ञान, सुख दुःख क्लेशों की उपलब्धि होने से सब ब्रह्म दुःखादि के अनुभव से ही कार्योपाधि अर्थात् अन्तःकरण की उपाधि के अनुभव से ही कार्योपाधि अर्थात् अन्तः करण की उपाधि के योग से ब्रह्म को जीव मनोगे तो हम पूछते है कि ब्रह्म व्यापक हैं वा परिच्छिन्न ? जो कहो व्यापक, और उपाधि परिच्छिन्न अर्थात एक देशी और प्रथक २ है तो अन्तःकरण चलता फिरता है वा नहीं ? (उत्तर) चलता फिरता है। (प्रश्न) अन्तः करण के साथ ब्रह्म भी चलता फिरता है वा स्थिर रहता है ? (उत्तर) स्थिर रहता है। (प्रश्न) जब अन्तःकरण जिस २ देश को छोड़ता है उस उस देश का ब्रह्म अज्ञान रहित और जिस २ देश को प्राप्त होता है उस उस देश का शुद्ध ब्रह्म अज्ञानी होता होगा। वैसे क्षण में ज्ञानी और अज्ञानी ब्रह्म होता रहेगा। इससे मोक्ष और बन्ध भी क्षण भङ्ग होगा, और जैसे अन्य के देखे का अन्य स्मरण नहीं रह सकता। क्यों कि जिस समय देखी सुनी थी वह दूसरा देश और दूसरा काल, जिस समय स्मरण करता वह दूसरा देश और काल है। जो कहो ब्रह्म एक है तो सर्वज्ञ क्यों नहीं ? जो कहो कि अन्तः करण भिन्न २ है, इससे वह भी भिन्न २ होता होगा, तो वह जड़ है उसमें ज्ञान नहीं हो सकता। जो कहो कि न केवल ब्रह्म और न केवल अन्तःकरण को ज्ञान होता है किन्तु अन्तः करणस्थ चिदाभास को ज्ञान होता है तो भी चेतन ही को अन्तःकरण

द्वारा ज्ञान हुआ। तो वह नेत्र द्वारा अल्प अल्पज्ञ क्यों है ? इस लिए कारणोपाधि और कार्योपाधि के योग से ब्रह्म जीव और ईश्वर नहीं बना सकोगे। किन्तु ईश्वर नाम ब्रह्म का है। और ब्रह्म से भिन्न अनादि अनुत्पन्न और अमृतस्वरुप जीव का नाम जीव है जो तुम कहो कि जीव चिदाभास का नाम है तो वह क्षण भंग होने से नष्ट हो जायेगा, तो मोक्ष का सुख कौन भोगेगा ? इसलिए ब्रह्म जीव और जीव ब्रह्म कभी न हुआ, न है, और न होगा।

प्रश्न—"तो सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्" (छान्दोग्य०) अद्वैत सिद्धि कैसे होगी ? हमारे मत में तो ब्रह्म से प्रथक सजातीय विजातीय और स्वगत अवयवों के भेद न होने से एक ब्रह्म ही सिद्ध होता है। जब जीव दूसरा है तो अद्वैत सिद्धि कैसे हो सकती है ?

उत्तर—इस भ्रम में पड़ क्यों डरते हो ? विशेष्य विशेषण विद्या का ज्ञान करो कि उसका क्या फल है। जो कहो कि व्यावर्तक विशेषणं भवताति" विशेषण भेद कारक होता है तो इतना और भी मानों कि "प्रवर्तकं प्रकाशमपि विशेषणं भवतीति' विशेषण प्रवर्त्तक और प्रकाशक भी होता है। तो समझो कि अद्वैत विशेषण ब्रह्म का है। इसमें व्यावर्त्तक धर्म यह है कि अद्वैत वस्तु अर्थात् जो अनेक जीव और तत्व हैं उनसे ब्रह्म को प्रथक करता है, और विशेण का प्रकाशक धर्म यह है कि ब्रह्म के होने की प्रवृत्ति करता है जैसे 'अस्मिन्नगरे अद्वितीयो धनाढ्यो देवदत्तः। अस्याम सेनायाम द्वितीयः शूर बीरो विक्रमसिंहः। किसी ने किसी से कहाकि इस नगर में अद्वितीय धनाढ्य देवदत्त और इस सेना में अद्वितीय शूरवीर विक्रमसिंह है। इससे क्या सिद्ध हुआ कि देवदत्त के सदृश इस नगर में दूसरा धनाढ्य और इस सेना में विक्रमसिंह के समान दूसरा शूरवीर नहीं है, न्यून तो हैं। और पृथ्वी आदि जड़ पदार्थ, पश्वादि प्राणी और

वृक्षादि भी हैं । उनका निषेध नहीं हो सकता । वैसे ही ब्रह्म के सदृश जीव वा प्रकृति नहीं है, किन्तु न्यून तो हैं । इससे यह सिद्ध हुआ कि ब्रह्म सदा एक है और जीव तथा प्रकृतिस्थ तत्व अनेक हैं । उनसे भिन्न कर ब्रह्म के एकत्व को सिद्ध करने द्वारा अद्वैत वा अद्वितीय विशेषण है । इसमें जीव और प्रकृति का और कार्य रूप जगत का अभाव और निषेध नहीं हो सकता । किन्तु ये सब हैं, परन्तु ब्रह्म के तुल्य नहीं । इससे न अद्वैत सिद्धि और न द्वैत सिद्धि की हानि होती है । घबराहट में मत पड़ो । सोचो और समझो ।

प्रश्न—ब्रह्म के सत्त, चित्त, आनन्द और जीव के अस्ति, भाति, प्रिय रूप से एकता होती है । फिर क्यों खण्डन करते हो ?

उत्तर—किंचित साधर्म्य मिलने में एकता नहीं हो सकती । जैसे पृथिवी जड़ दृश्य है, वैसे जल और अग्नि आदि भी जड़ और दृश्य हैं । इतने से एकता नहीं होती । इनमें वैधर्म्य भेद कारक अर्थात विरुद्ध धर्म जैसे, गन्ध, रुक्षता, काठिन्य, आदि गुण पृथिवी और रस द्रवत्व कोमलत्वादि धर्म जल और रूप, दाहकत्वादि धर्म अग्नि के होने से एकता नहीं । जैसे मनुष्य और कीड़ी आंख से देखते हैं, मुख से खाते और पगसे चलते हैं तथापि मनुष्य की आकृति दो पग और कीड़ी की आकृति अनेक पग आदि भिन्न होने से एकता नहीं होती, वैसे परमेश्वर के अनन्त ज्ञान, आनन्द, बल, क्रिया, निर्भ्रान्तित्व और व्यापकता जीव से, और जीव के अल्पज्ञान, अल्प बल, अल्प स्वरूप, सब भ्रान्तित्व और परिच्छन्नतादिगुण ब्रह्म से भिन्न होने से जीव और परमेश्वर एक नहीं, क्यों कि इनका स्वरूप भी (परमेश्वर अति सूक्ष्म और जीव उससे स्थूल होने से) भिन्न है ।

प्रश्न—अथोदर मन्तरं कुरुते । अथ तस्य भयं भवति द्वितीया द्वै भयं भवति ।। यह वृहदारण्यक का वचन है । जो ब्रह्म और जीव में थोड़ा भी भेद करता है, उसको भय प्राप्त होता है, क्यों कि दूसरे ही से भय होता है ।

उत्तर—इसका अर्थ यह नहीं है किन्तु जो जीव परमेश्वर का निषेध वा किसी एक देश काल में परिच्छिन्न परमात्मा को माने वा उसकी आज्ञा और गुण कर्म स्वभाव से विरुद्ध होवे अथवा किसी दूसरे मनुष्य से वैर करे, उसको भय प्राप्त होता है, क्योंकि द्वितीय बुद्धि अर्थात् ईश्वर से मुझ से कुछ सम्बन्ध नहीं तथा किसी मनुष्य से कहे कि तुझको मैं कुछ नहीं समझता, तू मेरा कुछ भी नहीं कर सकता, वा किसी की हानि करता और दुःख देता जाय तो उसको उनसे भय होता है। और सब प्रकार का अविरोध हो तो वे एक कहाते हैं। जैसा संसार में कहते हैं कि देवदत्त, यज्ञदत्त, और विष्णुमित्र एक हैं अर्थात् अविरुद्ध हैं। विरोध न रहने से सुख और विरोध से दुःख प्राप्त होता है।

(सत्यार्थ प्रकाश सप्तम समुल्लास)

(सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास से)

"नवीन वेदान्तियों का मत ऐसा है (प्रश्न) जगत स्वप्नवत, रज्जू में सर्प, सीप में चांदी, मृग तृष्णिका में जल, गन्धर्व नगर इन्द्रजालवत् यह संसार झूठा है, एक ब्रह्म ही सच्चा है।

सिद्धान्ती—झूठा तुम किसको कहते हो ?

नवीन—जो वस्तु न हो और प्रतीत होवे।

सिद्धान्ती-जो वस्तु ही नहीं उसकी प्रतीत कैसे हो सकती है ?

नवीन—अध्यारोप से।

सिद्धान्ती—अध्यारोप किसको कहते हैं ?

नवीन—"वस्तुन्यवस्त्वारोपणमध्यासः" अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपंचं प्रपंच्यते" पदार्थ कुछ और हो, उसमें अन्य वस्तु का आरोपण करना अध्यास, अध्यारोप और उसका निराकरण करना अपवाद कहाता है। इन दोनों से प्रपंच रहित, ब्रह्म में प्रपंच रूप जगत विस्तार करते हैं।

सिध्दान्ती—तुम रज्जू को वस्तु और सर्प को अवस्तु मानकर

इस भ्रम जाल में पड़े हो, क्या सर्प वस्तु नहीं है ? जो कहो रज्जू में नहीं तो देशान्तर में, और उसका संस्कार मात्र हृदय में है। फिर वह सर्प भी अवस्तु नहीं रहा। वैसे ही स्थाणु में पुरुष, सीप में चांदी आदि की व्यवस्था समझ लेना और स्वप्न में भी जिसका भान होता है वे देशान्तर में है और उनके संस्कार आत्मा में भी हैं। इसलिए वह स्वप्न भी वस्तु में आरोपण के समान नहीं।

नवीन—जो न कभी देखा, न सुना, जैसा कि अपना शिर कटा और आप रोता है, जल की धारा ऊपर चली जाती है, जो कभी न हुआ था, देखा जाता है, वह सत्य क्यों कर हो सके ?

सिद्धान्ती – यह भी दृष्टान्त तुम्हारे पक्ष को सिद्ध नहीं करता। क्योंकि बिना देखे सुने संस्कार नहीं होता। जब किसी से सुना वा देखा कि अमुक का शिर फटा और उसके भाई मां बाप आदि को लड़ाई में प्रत्यक्ष रोते देखा और फौहारे का जल ऊपर चढ़ते देखा वा सुना, उसका संस्कार उसी के आत्मा में होता है। जब यह जगत के जाग्रत के पदार्थ से अलग होके देखता है तब अपने आत्मा में उन्हीं पदार्थों को जिनको देखा वा सुना होता, देखता है। जब अपने ही में देखता है, तब जानो अपना शिर कटा आप रोता और ऊपर जाती जल की धारा को देखता है। यह भी वस्तु में अवस्तु के आरोपण के सदृश्य नहीं, किन्तु जैसे नकशा निकालने वाले पूर्व दृष्ट श्रुत वा किये हुओं को आत्मा में से निकाल कर कागज पर लिख देते हैं अथवा प्रतिबिम्ब का उतारने वाला बिम्ब को देखकर आत्मा में आकृति को धर बराबर लिख देता है। हां, इतना है कि कभी कभी स्वप्न में स्मरण युक्त प्रतीति जैसा कि अपने अध्यापक को देखता है और कभी बहुत काल देखने और सुनने में अतीत ज्ञान को साक्षात्कार करता है। तब स्मरण नहीं रहता कि मैंने उस समय देखा, सुना वा किया था उसी को देखता सुनता वा करता हूं, जैसा जाग्रत में स्मरण करता है वैसा स्वप्न में नियम पूर्वक नहीं होता। देखो जन्मान्ध को रूप का स्वप्न

नहीं आता। इसलिए तुम्हारा अध्यास और अध्यारोप का लक्षण झूठा है। और जो वेदान्ती लोग विवर्तवाद अर्थात् रज्जू में सर्पादि के भान होने का दृष्टान्त, ब्रह्म में जगत के भान होने में देते हैं, वह भी ठीक नहीं।

नवीन—अष्ठिान के बिना अध्यस्त प्रतीत नहीं होता। जैसे रज्जू न हो तो सर्प का भी भान नहीं हो सकता जैसे रज्जू में सर्प तीन काल में नहीं है, परन्तु अन्धकार और कुछ प्रकाश के मेल में अकस्मात रज्जू को देखने से सर्प का भ्रम होकर भय से कांपता है। जब उसकी दीप आदि से देख लेता है, उसी समय भ्रम और भय निवृत्त हो जाता है। वैसे ब्रह्म में जो जगत की मिथ्या प्रतीत हुई है, वह ब्रह्म के साक्षातकार होने से उसकी निवृत्ति और ब्रह्म की प्रतीत हो जाती है जैसा कि सर्प की निवृत्ति और रज्जू की प्रतीति होती है।

सिद्धान्ती—ब्रह्म में जगत का भान किसको हुआ ?

नवीन—जीव को।

सिद्धान्ती—जीव कहां से हुआ ?

नवीन—अज्ञान से।

सिद्धान्ती—अज्ञान कहां से हुआ और कहाँ रहता है ?

नवीन—अज्ञान अनादि और ब्रह्म में रहता है।

सिद्धान्ती—ब्रह्म में ब्रह्म का अज्ञान हुआ वा किसी का अन्य का ? वह अज्ञान किसको हुआ ?

नवीन—चिदाभास को ?

सिद्धान्ती—चिदाभास का स्वरूप क्या है ?

नवीन—ब्रह्म-ब्रह्म को ब्रह्म का अज्ञान, अर्थात् अपने स्वरूप को आप ही भूल जाता है।

सिद्धान्ती—उसके भूलने में निमित्त क्या है ?

नवीन—अविद्या।

सिद्धान्ती—अविद्या सर्वव्यापी सर्वज्ञ का गुण है वा अल्पज्ञ का ?

नवीन—अल्पज्ञ का।

सिद्धान्ती—तो तुम्हारे मत में बिना एक अनन्त सर्वज्ञ चेतन के दूसरा कोई चेतन है वा नहीं ? और अल्पज्ञ कहां से आया ? हां जो अल्पज्ञ चेतन ब्रह्म से भिन्न मानो तो ठीक है। जब एक ठिकाने ब्रह्मको अपने स्वरूप का अज्ञान हो तो सर्वत्र अज्ञान फैल जाय। जैसे शरीर में फोड़े की पीड़ा सब शरीर के अवयवों को निकम्मा कर देती है, इसी प्रकार ब्रह्म भी एक देश में अज्ञानी और क्लेश युक्त हो तो सब ब्रह्म भी अज्ञानी और पीड़ा के अनुभव युक्त हो जायें।

नवीन—यह सब उपाधि का धर्म है ब्रह्म का नहीं।

सिद्धान्ती-उपाधि जड़ है वा चेतन और सत्य है वा असत्य ?

नवीन—अनिर्वचनीय है। अर्थात् जिसको जड़ वा चेतन, सत्य वा असत्य नहीं कह सकते।

सिद्धान्ती-यह तुम्हारा कथन "वदतो व्याघात:" के तुल्य है क्योंकि कहते हो अविद्या है जिसको जड़ चेतन, सत, असत नहीं कह सकते। यह ऐसी बात है कि जैसे सोने में पीतल मिला हो, उसको सराफ के पास परीक्षा करावे कि यह सोना है वा पीतल। तब यही कहोगे कि इसको हम न सोना न पीतल कह सकते हैं, किन्तु इसमें दोनों धातु मिली हैं।

नवीन—जैसे देखो घटाकाश, मठाकाश, मेघाकाश और महदाकाशोपाधि अर्थात घड़ा, घर और मेघ के होने से भिन्न २ प्रतीत होते हैं, वास्तव में महदाकाश ही है, ऐसे ही माया, अविद्या, समष्टि, व्यष्टि और अन्तःकरण की उपाधियों से ब्रह्म अज्ञानियों को प्रथक २ प्रतीत हो रहा है, वास्तव में एक ही है। देखो अग्रिम प्रमाण में क्या कहा है—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रति रूपो वभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रति रूपो वभूव॥

(कठ० उ० वल्ली ५। मं० ९)

जैसे अग्नि लम्बे, चौड़े, गोल, छोटे बड़े सब आकृति वाले पदार्थों में व्यापक होकर तदाकार दीखता और उनसे प्रथक है, वैसे सर्व व्यापक परमात्मा अन्तःकरणों में व्यापक होके अन्तः करणाकार हो रहा है, परन्तु उनसे अलग है।

सिद्धान्ती—यह भी तुम्हारा कहना व्यर्थ हैं क्योंकि जैसे घट मठ मेघों और आकाश को भिन्न मानते हो वैसे कारण कार्य रूप जगत और जीव को ब्रह्म से, और ब्रह्म को इनसे भिन्न मान लो।

नवीन—जैसा अग्नि सब में प्रविष्ट हो कर देखने में तदाकार दीखता है इसी प्रकार परमात्मा जड़ और जीव में व्यापक होकर आकार वाला अज्ञानियों को आकार युक्त दीखता है। वास्तव में ब्रह्म न जड़ और न जीव है। जैसे जल के सहस्र कूंडे धरे हों, उसमें सूर्य केसहस्रों प्रतिबिम्ब दीखते हैः वस्तुतः सूर्य एक है। कुंडों के नष्ट होने से, जल के चलने व फैलने से सूर्य न नष्ट होता न चलता और न फैलता, इसी प्रकार अन्तःकरणों में ब्रह्म का आभास जिसको चिदाभास कहते हैं पड़ा है। जब तक अन्तःकरण है तभी तक जीव है। जब अन्तः करण ज्ञान से नष्ट होता है तब जीव ब्रह्म स्वरूप है। इस चिदाभास को अपने ब्रह्म स्वरूप का अज्ञान कर्ता, भोक्ता सुखी दुःखी, पापी, पुण्यात्मा, जन्म, मरण, अपने में आरोपित करता है तब तक संसार के बन्धनों से नहीं छूटता।

सिद्धान्ती—यह दृष्टान्त तुम्हारा व्यर्थ है क्यो कि सूर्य आकार वाला जल कूंडे में भी साकार है। सूर्य जल कूंडे से भिन्न और जल कूंडे सूर्य से भिन्न है। तभी प्रतिबिम्ब पड़ता है। यदि निराकार होते तो उनका प्रतिबिम्ब कभी न होता और जैसे परमेश्वर निराकार सर्वत्र आकाशवत् व्यापक होने से ब्रह्म से कोई पदार्थ वा पदार्थों से ब्रह्म प्रथक नहीं हो सकता और व्यापक व्याप्य सम्बन्ध से एक भी नहीं हो

सकता। अर्थात् अन्वय व्यतिरेक भाव से देखने से व्यापक व्याप्य मिले हुए और सदा प्रथक रहते हैं। जो एक हों तो अपने में व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध कभी नहीं घट सकता। सो ब्रहदारण्यक के अन्तर्यामी ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है। और ब्रह्म का आभास भी नहीं पड़ सकता, क्यों कि बिना आकार के आभास का होना असम्भव है। जो अन्तःकरणोपाधि से ब्रह्म को जीव मानते हो सो तुम्हारी बात बालक के समान है। अन्तःकरण चलायमान, खण्ड २ और ब्रह्म अचल और अखण्ड हैं। यदि तुम ब्रह्म और जीव को प्रथक २ न मानोगे तो इसका उत्तर दीजिये कि जहां जहां अन्तःकरण चला जायेगा वहां वहां के ब्रह्म को अज्ञानी और जिस २ देश को छोड़ेगा वहां २ के ब्रह्म को ज्ञानी कर देवेगा वा नहीं। जैसे छाता प्रकाश के बीच में जहां २ जाता है वहां २ के प्रकाश आवरण युक्त और जहां २ से हटता जाता है वहां २ के प्रकाश को आवरण सहित कर देता है, वैसे ही अन्तःकरण ब्रह्म को क्षण २ में ज्ञानी अज्ञानी बद्ध और मुक्त करता जायेगा। अखंड ब्रह्म के एक देश में आवरण का प्रभाव सर्व देश में होने से सब ब्रह्म अज्ञानी हो जायगा क्यों कि वह चेतन है। और मथुरा में जिस अन्तःकरणस्थ ब्रह्म ने जो वस्तु देखी उसका स्मरण उसी अन्तःकरणस्थ से काशी में नहीं हो सकता। क्योंकि "अन्त दृष्टि मन्यो न स्मरसीति न्यायात्" और के देखे का स्मरण और को नहीं होता। जिस चिदाभास ने मथुरा में देखा वह चिदाभास काशी में नहीं रहता। किन्तु जो मथुरास्त अन्तःकरण प्रकाशक है वह काशीस्थ ब्रह्म नहीं होता। जो ब्रह्म ही जीव है, प्रथक नहीं, तो जीव को सर्वज्ञ होना चाहिए। यदि ब्रह्म का प्रतिबिम्ब प्रथक है, तो प्रत्य भिज्ञा अर्थात् पूर्व दृष्ट, श्रुत का ज्ञान किसी को नहीं हो सकेगा। जो कहो कि ब्रह्म एक है इसलिए स्मरण होता है, तो एक ठिकाने अज्ञान वा दुःख होने से सब ब्रह्म को अज्ञान वा दुःख हो जाना चाहिए। और ऐसे २ दृष्टान्तों से नित्य शुद्ध बुद्ध

मुक्त स्वभाव व्रह्म को तुमने अशुद्ध अज्ञानी और बद्ध आदि दोष युक्त कर दिया है और अखण्ड को खण्ड २ कर दिया।

नवीन-निराकार का भी आभास होता है जैसा कि दर्पण वा जलादि में आकाश का आभास पड़ता है। वह नीला वा किसी अन्य प्रकार गम्भीर दीखता गहरा दीखता है, वैसे ब्रह्म का भी सब अन्त:करणों में आभास पड़ता है।

सिद्धान्ती–जब आकाश में रूप ही नहीं है तो उसको आंख से कोई भी नहीं देख सकता। जो पदार्थ दीखता ही नहीं वह दर्पण और जलादि में कैसे दीखेगा। गहरा या छिदरा साकार वस्तु दीखती है, निराकार नहीं।

नवीन—तो फिर जो यह ऊपर नीला सा दीखता है वही आदर्श वाले में भान होता है, वह क्या पदार्थ है ?

सिद्धान्ती—वह पृथ्वी से उड़कर जल पृथ्वी और अग्नि के त्रिसरेणु हैं। जहां से वर्षा होती है वहां जल न हो तो वर्षा कहां से होवे। इसलिए जो दूर २ तक तम्बू के समान दीखता है व जल का चक्र है। जैसे कुहिरा दूर से घनाकार दीखता है और निकट से छिदरा और डेरे के समान भी दीखता है वैसे आकाश में जल दीखता है ?

नवीन—क्या हमारे रज्जू-सर्प और स्वप्नादि के दृष्टान्त मिथ्या हैं ?

सिद्धान्ती—नहीं, तुम्हारी समझ मिथ्या है, सो हमने पूर्व लिख दिया। भला यह तो कहो कि प्रथम अज्ञान किसको होता है ?

नवीन—व्रह्म को।

सिद्धान्ती-ब्रह्म अल्पज्ञ है वा सर्वज्ञ।

नवीन—न सर्वज्ञ और न अल्पज्ञ। क्यों कि सर्वज्ञता और अल्पज्ञता उपाधि सहित में होती है।

सिद्धान्ती—उपाधि से सहित कौन है ?

नवीन—ब्रह्म ।

सिद्धान्ती—तो ब्रह्म ही सर्वज्ञ और अल्पज्ञ हुआ । तो तुमने सर्वज्ञ और अल्पज्ञ का निषेध क्यों किया था ? जो कहो कि उपाधि कल्पित अर्थात मिथ्या है, तो कल्पक अर्थात् कल्पना करने वाला कौन है ?

नवीन—जीव ब्रह्म है वा अन्य ?

सिद्धान्ती—अन्य है । क्यों कि जो ब्रह्मस्वरूप है तो जिसने मिथ्या कल्पना की वह ब्रह्म ही नहीं हो सकता । जिसकी कल्पना मिथ्या है, वह सच्चा कब हो सकता है ।

नवीन—हम सत्य और असत्य को झूठ मानते हैं । और वाणी से बोलना भी मिथ्या है ।

सिद्धान्ती - जब तुम झूठ कहने और मानने वाले हो तो झूठे क्यों नहीं ?

नवीन—रहो, झूठ और सच हमारे ही में कल्पित है और उन दोनों के साक्षी अधिष्ठान हैं ।

सिद्धान्ती—जब तुम सत्य और झूठ के आधार हुए तो साहूकार और चोर के सदृश्य तुम ही हुए । इससे तुम प्रमाणिक भी नहीं रहे । क्यों कि प्रमाणिक वह होता है जो सर्वदा सत्य माने बोले और सत्य करे । झूठ न माने । झूठ न बोले और झूठ कदाचित न करे । जब तुम अपनी बात को आप ही झूठ करते हो तो तुम अपने आप मिथ्याव दी हो ।

नवीन—अनादि माया जो ब्रह्म के आश्रय और ब्रह्म ही का आवरण करती है उसको मानते हो वा नहीं ?

सिद्धान्ती—नहीं मानते, क्यों कि तुम माया का अर्थ ऐसा करते हो कि जो वस्तु न हो और भासे है तो इस बात को वह मानेगा जिसके हृदय की आंख फूट गई हो । क्यों कि जो वस्तु नहीं उसका भासमान होना सर्वथा असम्भव है । जैसे वन्ध्या के पुत्र का प्रतिबिम्ब कभी नहीं हो सकता । और वह "सन्मूला सोम्येमाः प्रजाः"

इत्यादि छान्दोग्य उपनिषदों के वचनों के विरुद्ध कहते हो ?

नवीन क्या तुम वसिष्ठ, शंकराचार्य आदि और निश्चल दास पर्यन्त जो तुम से अधिक पंडित हुए हैं उन्होंने लिखा है, उसका खण्डन करते हो ? हमको तो वसिष्ठ शंकराचार्य वल्लभ दास आदि अधिक दीखते हैं।

सिद्धान्ती—तुम विद्वान हो वा अविद्वान ?

नवीन-हम भी कुछ विद्वान हैं।

सिद्धान्ती—अच्छा तो वसिष्ठ, शंकराचार्य, निश्चलदास के पक्ष का हमारे सामने स्थापन करो। हम खण्डन करते हैं। जिसका पक्ष सिद्ध हो वही बड़ा है। जो उनकी और तुम्हारी बात अखण्डनीय होती तो तुम उनकी युक्तियां लेकर हमारी बात का खण्डन क्यों न कर सकते। तब तुम्हारी और उनकी बात माननीय होवे। अनुमान है कि शंकराचार्य आदि ने तो जैनियों के मत के खण्डन करने ही के लिए यह मत स्वीकार किया हो, क्यों कि देश काल के अनुकूल अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिए बहुत से स्वार्थी विद्वान अपने आत्मा के ज्ञान से विरुद्ध भी कर लेते हैं। और जो उन बातों को अर्थात् जीव ईश्वर की एकता जगत मिथ्या आदि व्यवहार सच्चा नहीं मानते थे तो उनकी बात सच्ची नहीं हो सकती और निश्चलदास का पाण्डित्य देखो ऐसा है 'जीवो ब्रह्मा अभिन्नश्चेतन त्वात्'' उन्होंने ''वृत्ति प्रभाकर'' में जीव ब्रह्म की एकता के लिए अनुमान लिखा है कि चेतन होने से ब्रह्म से अभिन्न है, यह बहुत कम समझ पुरुष की बात के सदृश्य बात है। क्योंकि साधर्म्य मात्र से एक दूसरे के साथ एकता नहीं होती वैधर्म्य भेदक होता है। जैसे कोई कहे कि ''पृथिवी जलाऽभिन्ना जड़त्वात्'' जड़ के होने से पृथ्वी जल से अभिन्न है। जैसे यह वाक्य संगत कभी नहीं हो सकता वैसे निश्चलदास जी का भी लक्षण

व्यर्थ है। क्यों कि जो अल्प, अल्पज्ञता और भ्रान्तिमत्वादि धर्म जीव में ब्रह्म से और सर्वगत सर्वज्ञता और निभ्रान्तित्वादि वैधर्म्य ब्रह्म में जीव से बिरुद्ध हैं इससे ब्रह्म और जीव भिन्न २ हैं। जैसे गन्धवत्व कठिनत्वादि भूमि के धर्म, रसवत्व, द्रवत्वादि जलके धर्म से विरुद्ध होने से पृथ्वी और जल एक। नहीं वैसे जीव और ब्रह्म के वैधर्म्य होने से जीव और ब्रह्म एक न कभी थे न कभी होंगे। इतने ही से निश्चलदास आदि को समझ लीजिए कि उनमें कितना पाण्डित्य था और जिको योग वसिष्ठ बनाया था वह कोई आधुनिक वेदान्ती था न वाल्मीकि, वसिष्ठ और रामचन्द्र का बनाया वा कहा सुना है। क्यों कि वे सब वेदानुयायी थे, वेद से विरुद्ध न बना सकते थे न कह सुन सकते थे।

प्रश्न-व्यास जी ने शारीरिक सूत्र बनाये हैं, उनमें भी जीव ब्रह्म का एकता दीखती है। देखो—

सम्पाद्य ऽऽविर्भावः स्वेन शब्दात् ॥१॥ ब्राह्मेण जैमिनिरुप न्यासादिभ्यः ॥२॥ चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादि त्यौडुलोमिः ॥३॥ एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं वादरायणः ॥ ४ ॥ अतएव चनन्याधिपत्तिः ॥५॥

(वेदान्तदर्शन अ० ४।पा० ४।सू० १।५-७।६)

अर्थात जीव अपने स्वरूप को प्राप्त होकर प्रगट होता है जो कि पूर्व ब्रह्म स्वरूप था क्योंकि स्व शब्द से अपने ब्रह्मस्वरूप का ग्रहण होता है ।१। "अयमात्मा अपहत पाप्मा" इत्यादि उपन्यास ऐश्वर्य प्राप्ति पर्यन्त हेतुओं से ब्रह्मस्वरूप से जीव स्थित होता है। ऐसाजैमिनि आचार्य का मत है।२। औडुलोमिआचार्य तदात्मक स्वरूप निरुपणादि ब्रहदारण्यक के हेतु रूप के वचनों से चैतन्य मात्र स्वरूप से जीव मुक्ति में स्थित रहता है।५।

उत्तर—इन सूत्रों का अर्थ इस प्रकार का नहीं किन्तु इनका

यथार्थ अर्थ यह है सुनिए ! जब तक जीव अपने स्वकीय शुद्ध स्वरूप को प्राप्त, सब मलों से रहित होकर पवित्र नहीं होता तब तक योग से ऐश्वर्य को प्राप्त होकर अपने अन्तर्यामी ब्रह्म को प्राप्त होके आनन्द में स्थित नहीं हो सकता ।१। इसी प्रकार जब पापादि रहित ऐश्वर्य युक्त योगी होता है तभी ब्रह्म के साथ मुक्ति के आनन्द को भोग सकता है। ऐसा जैमिनि आचार्य का मत है ।२। जब अविद्यादि दोषों से छूट शुद्ध चैतन्य मात्र स्वरूप से जीव स्थिर होता है तभी 'तदात्मकत्व' अर्थात् ब्रह्मस्वरूप के सम्बन्ध को प्राप्त होता है ।३। जब ब्रह्म के साथ ऐश्वर्य और शुद्ध विज्ञान को जीते ही (प्राप्त कर) जीवन्मुक्त होता है तब अपने निर्मल पूर्व स्वरूप को प्राप्त होकर आनन्दित होता है, ऐसा व्यास मुनि जी का मत है ।४। जब योगी का सत्य संकल्प होता है तब स्वयं परमेश्वर को प्राप्त होकर मुक्ति सुख को पाता है। वहां स्वाधीन स्वतन्त्र रहता है। जैसे संसार में एक प्रधान दूसरा अप्रधान होता है, वैसा मुक्ति में नहीं। किन्तु सब मुक्त जीव एक से रहते हैं। जो ऐसा न हो तो—

नेतरोनुपपत्तेः। (१।१।१६) १॥

भेद व्यपदेशाश्च ॥ (१।१।१७) २॥

विशेषणभेद व्यपदेशाभ्यां च नेतरौ ॥ (१।१।२२) ३॥

अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति ॥ (१।१।१९) ४॥

अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ॥ (१।१।२०) ५॥

भेदव्यपदेशाच्चान्यः ॥ (१।१।२१) ६॥

गुहां प्रविष्टावात्मानौ हितद्दर्शनात् ॥ (१।२।११)७॥

अनुपपत्तेस्तु न शारीरः (१।२।३) ८॥

अन्तर्याम्यधि देवादिषुतद्धर्म व्यपदेशात् ॥ (१।२।१८) ९॥

शारीरश्चोऽभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते ।। (१।२।२०) १०।।

व्यास मुनिकृत वेदान्त सूत्राणि ।

अर्थ —ब्रह्म से इतर जीव सृष्टि कर्ता नहीं है क्योंकि इस अल्प, अल्पज्ञ सामर्थ वाले जीव में सृष्टि कर्तृत्व नहीं घट सकता । इससे जीव ब्रह्म नहीं ।।१।। रसह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति'' यह उपनिषद का वचन है । जीव और ब्रह्म भिन्न हैं क्योंकि इन दोनों का भेद प्रतिपादन किया है । जो ऐसा न होता तो रस अर्थात् आनन्द स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होकर जीव आनन्द स्वरूप होता है, यह प्राप्ति विषय ब्रह्म और प्राप्त होने वाले जीव का निरुपण नहीं घट सकता । इसलिए जीव और ब्रह्म एक नहीं ।।२।।

दिव्योह्यमूर्त्तः पुरुषः स वाह्याभ्यन्तरोह्यजः । अप्राणोह्यमनाः शुभ्रोह्यक्षरात्परतः परः ।। मुण्डकोपनिषदि (मु० २। ख० १। मं० २)

दिव्य शुद्ध मूर्तिमत्व रहित सब में पूर्ण बाहर भीतर निरन्तर व्यापक अज, जन्म मरण शरीरधारणादि रहित श्वास प्रश्वास, शरीर और मन के सम्बन्ध से रहित, प्रकाश स्वरूप इत्यादि परमात्मा के विशेषण और अक्षर नाश रहित प्रकृति से परे अर्थात् सूक्ष्म जीव उससे भी परमेश्वर परे अर्थात् ब्रह्म सूक्ष्म हैं । प्रकृति और जीवों से ब्रह्म का भेद प्रतिपादन रूप हेतुओं से प्रकृति जीवों से ब्रह्म भिन्न है । ३। इसी सर्व व्यापक ब्रह्म में जीव का योग वा जीव में ब्रह्म का योग प्रतिपादन करने से जीव और ब्रह्म भिन्न हैं । क्योंकि योग भिन्न पदार्थों का हुआ करता है । ।४। इस ब्रह्म के अन्तर्यामि आदि धर्म कथन किये हैं और जीव के भीतर व्यापक होने से व्याप्य जीव व्यापक ब्रह्म से भिन्न है । क्योंकि व्याप्य व्यापक सम्बन्ध भी भेद में संगठित

होता है ॥५॥ जैसे परमात्मा जीव से भिन्न स्वरूप है वैसे इन्द्रिय अन्तःकरण पृथ्वी आदि भूत, दिशा वायु, सूर्यादि दिव्य गुणों के भोग से देवता वाच्य विद्वानों से भी परमात्मा भिन्न है ॥६॥ "गुह्यं प्रविष्टो सुकृतस्य लोके" इत्यादि उपनिषदों के वचनों से जीव और परमात्मा भिन्न हैं। वैसा ही उपनिषदों में बहुत ठिकाने दिखलाया है।७। "शरीर भवः शारीरः" शरीर धारी जीव ब्रह्म नहीं है क्यों कि ब्रह्म के गुण कर्म स्वाभाव जीव में नहीं घटते ॥८॥ (अधि देव) सब दिव्य मन आदि इन्द्रियादि पदार्थों (अधिभूत) पृथिव्यादि भूत (अध्यात्म) सब जीवों में परमात्मा अ तर्यामी रूप से स्थित है क्योंकि उसी परमात्मा के व्यापकत्वादि धर्म सर्वत्र उपनिषदों में व्याख्यात हैं।९॥ शरीर धारी जीव ब्रह्म नहीं है क्यों कि ब्रह्म से जीव का भेद स्वरूप से सिद्ध है।१०। इत्यादि शारीरिक सूत्रों से भी स्वरूप से ही ब्रह्म और जीव का भेद सिद्ध है। वैसे ही वेदान्तियों का उपक्रम और उपसंहार भी नहीं घट सकता क्यों कि "उपक्रम" अर्थात आरम्भ ब्रह्म से और उपसंहार अर्थात प्रलय भी ब्रह्म ही में करते हैं। जब दूसरी कोई वस्तु नहीं मानते तो उत्पत्ति और प्रलय भी ब्रह्म के धर्म हो जाते हैं। और उत्पत्ति विनाश रहित ब्रह्म का प्रति पादन वेदादि सत्य शास्त्रों में किया है, वह नवीन वेदान्तियों पर कोप करेगा। क्यों कि निर्विकार, अपरिणामी, शुद्ध सनातन, निर्भ्रान्त्वादि विशेषण युक्त ब्रह्म में विकार, उत्पत्ति और अज्ञान आदि का सम्भव किसी प्रकार नहीं हो सकता। तथा (उपसंहार) (प्रलय) के होने पर भी ब्रह्म कारणात्मक जड़ और जीव बराबर बने रहते हैं। इसलिए उपक्रमों और उपसंहार भी इन वेदान्तियों की कल्पना झूठी है। ऐसी अन्य बहुत सी अशुद्ध बातें हैं जो कि शास्त्र और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरुद्ध हैं।

('सत्यार्थ प्रकाश' समुल्लास ११)

नवीन वेदान्तियों (अद्वैतवादियों) का शब्द जाल

इन वेदान्तियों ने अनेक शब्द पेटेन्ट बना रखे हैं जिनका प्रयोग करके ये लोग जनता को भ्रम में डाला करते हैं। वे शब्द निम्न प्रकार हैं ।

तात्स्थ्योपाधि । माया । उपाधि । अनिर्वचनीय । मायोपाधि । अविद्योपाधि । अवच्छेदवाद । प्रतिबिम्बवाद । आभासवाद । मिथ्यावाद । विवर्तवाद । वैतथ्यवाद । उपचारवाद । आविर्भाव । अन्त:करणावच्छिन्न । अध्यारोप । तिरोभाव । चिदाभास । अध्यास भ्रम । स्वप्न । अद्वैत । सत्ता अभेद । तिरोहित । घटाकाश । महाकाश । जलाकाश । मेघाकाश । आत्म ख्याति । असत्ख्याति । अख्याति । अन्यथा ख्याति । सत्ख्याति । अनिर्वचनीयाख्याति ।

★

नवीन वेदान्तियों का पाखण्ड कीर्तन

सोऽहम बोल सोऽहम बोल।
तेरा क्या लगता है मोल ।। सो० ।। टेक

क्या करता जीवन की आशा।
जैसे जल में पड़ा बतासा ।।
दुनिया देती बुरा दिलासा।
पल में तोला पल में मासा ।।
प्यारे तोल सके तो तोल ।। सोऽहम० ।। ८ ।।

जिसने आकर जन्म लिया है।
उसने एक दिन कूंच किया है।
किसने किसका साथ दिया है।
इस जग का ढंग देख लिया ।।
अब तो अन्तर के पट खोल ।। सोऽहम० ।। २ ।।

जब यम फांस गले में डारें।
सुत पितु मात न कोई उबारें ।।
घर से बाहर तुरत निकारें।
करके नगन तेरो तन जारें ।।
उस दिन खुले प्रेम की पोल ।। सोऽहम्० ।। ३ ।।

जब इस जग का आना जाना।
सब को ज्ञान धर्म सिखलाना।
सबको आत्म ज्ञान सिखाना।
गुरू भक्ती का पाठ पढ़ाना ।।
हर दम सत गुरु के गुण गाना।
बस यह जीवन है अनमोल ।। सोऽहम० ।। ४ ।।

❀ समाप्त ❀

जनवरी सन् १९८५ से चालू — डा० श्रीराम आर्य प्रणीत ग्रन्थ

पुस्तक	मूल्य
बौद्धमत का भण्डाफोड़	३.००
हिन्दू मन्दिरों की लूट	१५.००
कुरान की छानबीन	१२.००
कुरान प्रकाश	७.००
गीता विवेचन	७.००
भागवत समीक्षा	७.००
बाइबिल दर्पण	६.००
कुरान पर १७६ प्रश्न	३.००
असत्य पर सत्य की विजय	५.५०
मौलवी हार गया	२.५०
ईश्वर सिद्धि	५.००
वैदिक यज्ञ विज्ञान	६ ००
जैन मत समीक्षा	५ ००
मुनि समाज मुखमर्दन	४ ५०
अवतार रहस्य	६.००
मूर्ति पूजा खण्डन	४ ५०
टोंक का शास्त्रार्थ	३.२५
धार्मिक शंका समाधान	४.५०
भारतीय शिष्टाचार	३ ००
शिवलिंग पूजा क्यों ?	४.५०
अद्वैतवाद मीमांसा	४.५०
प्रार्थना भजन भास्कर	४.५०
यजुर्वेद अ० ४० सव्याख्या	१.२०
यजुर्वेद अ० ३१ सव्याख्या	५.५०
वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है	२.००
पुराण किसने बनाये ?	३.००
माधवाचार्य को डबल उत्तर	२.२५
तुलसी और शालिगराम	१ ००
दुर्गा पर नर बलि	.६०
कुरान और अन्य मजहब	१.००
स्वर्ग विवेचन	.७५
हनुमान जी बन्दर नहीं थे	.६०
कुरान खुदाई कैसे	.६५
शैतान की कहानी	.५०
कुरान में परस्पर विरोधी स्थल	.३०
खुदा का रोजनामचा	.३५
पौराणिक मुख चपेटिका	.५०
पौराणिक गप्प दीपिका	१.५०
इस्लाम दर्शन	१.५०
कबीर मत गर्वमर्दन	३.५०
ब्रह्माकुमारी मत खण्डन	१.००
स.प्र. की छीछालेदड़ का उत्तर	२.००
महान पुरुष कैसे बनते हैं	३.५०
सव्याख्या विवाह पद्धति	४.२५
इस्लाम में नारी की दुर्गति	१.२५
कुरान में पुनर्जन्म	.८०
कुरान में विज्ञान विरुद्ध स्थल	.८०
चोटी ३० पैसे, जनेऊ ६० पैसे	
कुरान के विचारणीय स्थल	२.७५
पुराणों के कृष्ण	१.००
शिव जी के चार विलक्षण बेटे	१.००
मृतक श्राद्ध खण्डन	.७५
विभिन्न मतों में ईश्वर	.६०
गीता पर ४२ प्रश्न	.७५
शास्त्रार्थ के चेलेंज का उत्तर	१.००
पौराणिक कीर्तन पाखण्ड है	.७५
बाइबिल पर सप्रमाण ३१ प्रश्न	.५०
अर्थ सहित वैदिक संध्या	.७५
सनातन धर्म में नियोग व्यवस्था	.७५
नारी पर मजहबी अत्याचार	.५०
हंसामत का पोल खाता	.५०
नृसिंह अवतार वध	.३०
मेरठ का जंगली कुत्ता	४.००
अवतारवाद पर ३१ प्रश्न	.३०
ईसा मुक्तिदाता नहीं था	.३०
ईशा और मरियम	.३०
मूर्ति पूजा पर ३१ प्रश्न	.३०
ईसाई मत का पोलखाता	.३०
मृतक श्राद्ध पर ३१ प्रश्न	.३०
राधा स्वामी पाखण्ड खण्डन	२.५०
तम्बाकू अण्डा और मांस में विष	.६०

पता—वैदिक साहित्य प्रकाशन, कासगंज (एटा) उ० प्र० भारतवर्ष